

राजकमल अमर साहित्य—४

महाकवि प्रवरसेन कृत

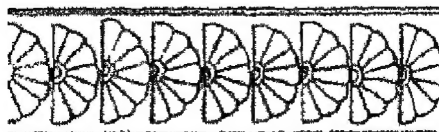
सेतुबन्ध

भूमिका और अनुवाद

डॉ० रघुवंश



राजकमल प्रकाशन
दिल्ली बम्बई इलाहाबाद पटना मद्रास



प्रकाशक :
राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटे
दिल्ली, बम्बई, इलाहाबाद, पटना, मद्र

मूल्य :
चार रुपये पचास नये पैसे

मुद्रक :
भार्गव प्रेस, इलाहाबाद

निवेदन

किसी काव्यकृति का अनुवाद आसान काम नहीं है। किसी काव्यात्मक भाव अथवा कल्पना को किसी प्रकार दूसरी भाषा के माध्यम से व्यक्त कर देना दूसरी बात है, पर उस काव्यात्मक अभिव्यक्ति को यथावत् बिना कवि की कल्पना को खंडित किये प्रस्तुत कर सकना बिल्कुल भिन्न बात है। संस्कृत अथवा प्राकृत के काव्य का हिन्दी में अनुवाद करना एक दृष्टि से और भी कठिन है। इन भाषाओं की समासपद्धति इनके काव्य की चित्रमय शैली के बहुत अनुकूल है। प्रायः सम्पूर्ण समास-पद विशेषण के समान वाक्यांश होता है जिसमें सम्पूर्ण चित्र का एक अंश अंकित होता है और इन्हीं विभिन्न चित्र-खंडों से पूरा चित्र बनता है। यदि इन चित्र-खंडों को अलग-अलग रख दिया जाय तो सारा काव्य-सौन्दर्य ही बिखर जायगा। हिन्दी की प्रकृति समास-पद्धति के बिल्कुल विपरीत है। इसके अतिरिक्त हिन्दी में विशेषण वाक्यांशों का प्रयोग अधिक नहीं चल पाता। यदि विशेषण वाक्य रखे जायँ तो भी भाषा में 'जो' 'जिनका' 'जिसका' आदि के प्रयोग से प्रवाह बाधित होता है। परिणाम है कि अनुवादक के सामने दुहरी कठिनाई है, एक ओर काव्यचित्रों के खंडित और भंग होने का डर है तो दूसरी ओर भाषा के प्रवाह को अक्षुण्ण रखने की चिन्ता है।

मैंने 'सेतुबंध' के अनुवाद में इसी समस्या का सामना किया है। बहुत विचार करके भी मैं काव्य-चित्रों के मोह को नहीं छोड़ सका, मुझे लगा कि काव्य के अनुवाद में कवि की कल्पना और उसके चित्रों की रक्षा ही अधिक महत्वपूर्ण है। यद्यपि मेरा यह प्रयत्न रहा है कि इसके साथ ही भाषा के प्रवाह की रक्षा भी हो सके, पर मैं मानता हूँ कि सदा

ऐसा नहीं कर सका हूँ। अनेक स्थलों पर भाषा कुछ लड़खड़ा गई है, विशेषकर वाक्यों में उलझाव आ गया है। पर मैंने सदा ही यह प्रयत्न किया है कि कवि का चित्र खंडित न होने पाये। संभव है कि मुझसे अधिक अच्छा सामंजस्य किसी प्रतिभाशील लेखक के द्वारा प्रस्तुत किया जा सकता। पर उसकी आशा और प्रतीक्षा में मैं जो इस कार्य को स्थगित नहीं रख सका, उसका एक मात्र कारण है इस काव्य का सौन्दर्य जो मुझे इस प्रकार अभिभूत करता रहा है कि मैं इस लोभ को अधिक संवरण नहीं कर सका। इससे अधिक मेरा दोष इस विषय में नहीं है।

अनुवाद के साथ एक भूमिका भी जोड़ दी गई है। पहले इच्छा थी कि इसके माध्यम से उस युग का एक सांस्कृतिक अध्ययन प्रस्तुत करूँगा, पर अन्ततः केवल सामग्री का विभाजन और अध्ययन मात्र कर सका हूँ। इस कार्य में रामप्रिय देवाचार्य जी से जो यत्किंचित सहायता मिली है, उसके लिए मैं उनका आभारी हूँ। मैं 'राजकमल प्रकाशन' का व्यक्तिगत रूप से आभारी हूँ, क्योंकि उनके प्रयत्न से इसका प्रकाशन सम्भव हो सका।

—रघुवंश

जिनसे

मुझे यह विश्वास मिला है—

ज्ञान के क्षेत्र का प्रत्येक प्रयत्न

भविष्य की सम्भावनाओं की

पीठिका मात्र है—

उन

उच्चाशय डॉ० धीरेन्द्र वर्मा को

सादर

समर्पित।



अध्याय-सूची

भूमिका

रचयिता का व्यक्तित्व

'सेतुबन्ध' का 'दशमुखवध' तथा 'रामसेतु' के नाम से भी उल्लेख किया जाता है। 'रामसेतु' नाम का उल्लेख रामदास भूपति की टीका के प्रारम्भिक छंदों में है :—

तद्व्याख्या सौष्ठवार्थं परिषदि कुरुते रामदासः स एव।
ग्रन्थं जल्लालदीन्द्रक्षितिपतिवचसा रामसेतुप्रदीपम्॥

इसका उल्लेख अलवर के केटलॉग में भी है। 'रावणवध' तो प्रचलित नाम है जिसका उल्लेख 'अपरनाम' के रूप में हुआ है। 'सेतुबन्ध' के लेखक की स्थिति बहुत स्पष्ट नहीं है। वैसे संस्कृत के अन्य कई कवियों के सम्बन्ध में भी हमको बहुत अधिक ज्ञात नहीं है। कवि-गुरु कालिदास के बारे में अभी तक बहुत निश्चय के साथ कुछ नहीं कहा जा सकता। परन्तु प्रस्तुत महाकाव्य के रचयिता के सम्बन्ध में एक उलझन और है। इस महाकाव्य के रचयिता के रूप में प्रवरसेन तथा कालिदास दोनों का नाम लिया जाता है।

'सेतुबन्ध' के व्याख्याकार रामदास भूपति ने कालिदास को इसका रचयिता माना है :—

धीराणां काव्यचर्चाचतुरिमविधये विक्रमादित्यवाचा।
यं चक्रे कालिदासः कविकुमुदविधुः सेतुनामप्रबन्धम्॥

आगे स्पष्ट शब्दों में वह फिर मंगलाचरण को प्रस्तुत करते हुए कहता है—'कविचक्रचूडामणिः कालिदास महाशयः सेतुबन्धप्रबन्धं चिकीर्षुः।' रामदास का समय १६५२ वि० अथवा १५९२ ई० है। 'सेतु-बन्ध' की कई प्राचीन प्रतियों के कतिपय आश्वासों के अन्त में कालि-

दास का कथाकार के रूप में निर्देश किया गया है। परन्तु इन प्रसंगों में प्रवरसेन का नाम भी है, जब कि शेष प्रसंगों में केवल प्रवरसेन का नाम है।[1] इस स्थिति में यह तो निश्चित है कि 'सेतुबन्ध' का रचयिता प्रवरसेन सर्वमान्य है, पर कालिदास के नाम से यह भ्रम उत्पन्न हो सकता है कि यह महाकाव्य कालिदास की रचना है और कालिदास ने प्रवरसेन को समर्पित कर दिया है, अथवा कालिदास तथा प्रवरसेन दोनों ने मिल कर इसकी रचना की है या कालिदास ने प्रवरसेन को इसकी रचना में सहायता दी है। इस तीसरी संभावना के लिये सेतुबन्ध के स्कंध १ : ९ को अन्तर्साक्ष्य के रूप में प्रस्तुत किया गया है, पर इसमें ऐसा अर्थ नहीं है। इसमें केवल यह कहा गया है कि रचना में बाद में संशोधन और सुधार किये गये हैं। इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि यह कार्य कालिदास ने किया। पर कवि स्वतः भी यह कार्य कर सकता है।

डॉ० राम जी उपाध्याय ने अपनी थीसिस 'प्राकृत महाकाव्यों का अध्ययन' में रामदास भूपति के इस भ्रम के सम्बन्ध में कहा है - 'कि वह सम्भवतः 'कुन्तलेश्वरदौत्य' पर आधारित भ्रामक परम्परा से प्रभावित हुआ है। क्षेमेन्द्र के अनुसार इसकी रचना कालिदास ने विक्रमादित्य द्वारा प्रवरसेन के पास दूत रूप में भेजे जाने के बाद की है। और प्रवरसेन तथा कालिदास की यह मित्रता इस भ्रम का मूल कारण हो गई होगी।' इस तर्क में बल है। क्योंकि यदि कालिदास और प्रवरसेन में इस प्रकार का सम्बन्ध होता तो पहले किसी संदर्भ में इसका उल्लेख होना चाहिए था। परन्तु इसके विपरीत जिन स्थलों पर 'सेतुबन्ध' का उल्लेख हुआ है वहाँ प्रवरसेन के साथ कालिदास का बिल्कुल नाम नहीं लिया गया है। दण्डी के 'काव्यादर्श' से तो केवल यह सूचना मिलती है :—

महाराष्ट्राश्रयां भाषां प्रकृष्टं प्राकृतं विदुः।
सागरः सूक्तिरत्नानां सेतुबन्धादि यन्मयम्॥ १ : ३४॥

इसमें कवि का उल्लेख नहीं किया गया है। बाण 'सेतुबन्ध' के

१ डॉ० राम जी उपाध्याय की थीसिस के आधार पर।

रचना काल में बहुत दूर नहीं पड़ते हैं और यदि इस महान रचना से कालिदास का किसी प्रकार का सम्बन्ध होता तो वह कालिदास का उल्लेख करना भूल नहीं सकते थे। यदि उनके समय तक यह बात भी प्रचलित होती कि कालिदास ने रचना करके प्रवरसेन को समर्पित कर दी है तब बाण प्रवरसेन की इन शब्दों में प्रशंसा न करते :—

कीर्तिः प्रवरसेनस्य प्रयाता कुमुदोज्ज्वला।
सागरस्य परं पारं कपिसेनेव सेतुना ॥ हर्षचरित ॥

बाण के बाद क्षेमेन्द्र ने 'औचित्यविचार चर्चा' में 'सेतुबन्ध' के रचयिता के रूप में प्रवरसेन को स्वीकार किया है।

इन संदर्भों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि प्रवरसेन के साथ कालिदास का नाम बाद में जोड़ा गया है और यह किसी भ्रम पर आधारित है। इस सम्बन्ध में डॉ० उपाध्याय का यह सुझाव महत्त्वपूर्ण है कि संभवतः कालिदास नामक कोई व्यक्ति प्रवरसेन के महाकाव्य का लिपिकार रहा होगा और इसी रूप से धीरे-धीरे इस भ्रम की उत्पत्ति हुई। महामहोपाध्याय वी० वी० मिराशी ने इस तथ्य की ओर ध्यान भी आकर्षित किया है कि प्रवरसेन द्वितीय के पट्टन के ताम्र लेख में उसके लेखक का नाम कालिदास दिया गया है। बाद की प्रतियों के लिपिकारों ने कालिदास लिपिकार को रचयिता होने की गरिमा प्रदान की होगी और क्योंकि यह उत्कृष्ट काव्य है, बाद में इस कालिदास को महाकवि कालिदास से अभिन्न मान लिया गया। यदि कालिदास को चन्द्रगुप्त द्वितीय का समकालीन स्वीकार किया जाय तो वह प्रवरसेन के समसामयिक भी ठहरते हैं। और इनके इस प्रकार समसामयिक होने पर इस भ्रम को और भी अधिक पुष्टि मिल गई होगी। परन्तु सम-कालीन मान लेने पर इस बात की सम्भावना को बिल्कुल निराधार नहीं माना जा सकता कि प्रवरसेन के इस महाकाव्य का संशोधन कालिदास ने किया था क्योंकि प्रवरसेन द्वितीय तथा चन्द्रगुप्त का अत्यंत घनिष्ठ सम्बन्ध इतिहास-सिद्ध है। डॉ० अल्तेकर ने अपनी पुस्तक 'वाकाटक-गुप्त

एज' में इस संभावना की ओर संकेत किया है। रुद्रसेन द्वितीय की मृत्यु के बाद उसकी पत्नी प्रभावती ने अपने पिता चन्द्रगुप्त द्वितीय के संरक्षण मे राज्य का कार्यभार संभाला। इस समय उसके दोनो पुत्र दिवाकर सेन तथा दामोदर सेन (बाद में राजा होने पर प्रवरसेन) छोटे थे, इनकी शिक्षा-दीक्षा की देख-रेख समुद्रगुप्त ने की थी। ऐसी स्थिति में यह असम्भव नही कि कालिदास प्रवरसेन के काव्य-शिक्षक रहे हो।

परन्तु अन्य अनेक ऐसे तर्क है जिनके द्वारा यह सिद्ध किया जा सकता है कि कालिदास प्रवरसेन के महाकाव्य को संशोधन करने की स्थिति मे नहो थे। कालिदास का क्षेत्र प्राकृत नहीं है और प्रवरसेन का महाराष्ट्री प्राकृत पर पूर्ण अधिकार है। 'सेतुबन्ध' कालिदास के महाकाव्यो के टक्कर का महाकाव्य है, उसके रचयिता को कालिदास से संशोधन करवाने की क्या आवश्यकता हो सकती है? विचारों, कल्पनाओं तथा उद्भावनाओं की दृष्टि से दोनों कवियों के क्षेत्र नितान्त भिन्न है। इनकी समता केवल प्रतिभा सम्बन्धी है। कालिदास सामान्यतः कोमल कल्पना के सौन्दर्य के कवि है, प्रवरसेन प्रायः विराट कल्पना के सौन्दर्य के कवि। 'सेतुबन्ध' मे अलंकृत शैली का अधिक प्रयोग हुआ है।

इतिहास में प्रवरसेन नाम के चार राजाओ के राज्यकाल का उल्लेख है। इनमें से दो काश्मीर के इस नाम के राजा है और दो दक्षिण के वाकाटक वंश के राजा है। काश्मीर के राजाओं के सम्बन्ध में कल्हण की 'राजतरङ्गिणी' की तीसरी तरंग मे उल्लेख है। पहले प्रवरसेन का समय ईसा की प्रथम शताब्दी (राज० ३ : ९९-१०१) और दूसरे प्रवरसेन का समय दूसरी शताब्दी ठहरता है (राज० ३ : १०६-१२५)। रामदास भूपति के 'रामसेतु प्रदीप' के अनुसार प्रवरसेन निमित्त महाराजाधिराज विक्रमादित्य की आज्ञा से कालिदास ने इसकी रचना की है। इस पर हम पहले विचार कर चुके हैं। पर रामदास की इस बात से

काश्मीर के द्वितीय प्रवरसेन का संकेत अधिक मिलता है, क्योंकि यही प्रवरसेन विक्रमादित्य के समाकालीन ठहरते हैं। इस आधार पर कुछ विद्वानो ने इस बात को सिद्ध करने का प्रयत्न भी किया है। परन्तु विक्रमादित्य के राज्य के समय राजतरंगिणी के अनुसार प्रवरसेन तीर्थयात्रा के लिये गया हुआ था। उनकी मृत्यु के बाद मातृगुप्त ने काश्मीर मण्डल छोड़ा है और तभी प्रवरसेन ने काश्मीर का राज्य प्राप्त किया। इस प्रकार यह बात सिद्ध नहीं होती और काश्मीर के प्रवरसेन से 'सेतुबन्ध' का सम्बन्ध स्थापित करना सम्भव नहीं जान पड़ता।

वाकाटक वंश में भी दो प्रवरसेन हुए हैं डॉ० अल्तेकर के अनुसार इस वंश के आदि पुरुष विन्ध्यशक्ति का नाम व्यक्तिवाची न होकर उपाधिसूचक है। वाकाटकों का कार्यक्षेत्र इन्होंने बुन्देलखण्ड अथवा आन्ध्र न मानकर विदिशा और विदर्भ माना है। विन्ध्यशक्ति के पुत्र प्रवरसेन प्रथम ने २७५ ई० से ३३५ ई० तक शासन किया। इस वंश मे केवल यही राजा है जिसने सम्राट की उपाधि धारण की है और इसी ने वाकाटक राज्य को समस्त दक्षिण मे विस्तार दिया। इसके बाद रुद्रसेन प्रथम ने अपने पितृव्य का स्थान ग्रहण किया (३३५ ई० से ३६० ई०) और फिर उसके पुत्र पृथ्वीसेन प्रथम ने ३६० ई० से ३८५ ई० तक राज्य किया। इसी के समय कुन्तल (दक्षिणी महाराष्ट्र) वाकाटक राज्य मे मिलाया गया। यद्यपि अब यह माना जाता है कि कुन्तल राज्य को वाकाटक वंश की दूसरी शाखा के विन्ध्यसेन ने पराजित किया था, पर इस वंश के प्रमुख होने के नाते पृथ्वीसेन को कुन्तलेश कहा गया है। पृथ्वीसेन के समय मे ही राजकुमार रुद्रसेन द्वितीय से गुप्तसम्राट चन्द्रगुप्त द्वितीय की पुत्री प्रभावती का विवाह हो चुका था। इस प्रकार वाकाटक तथा गुप्त शक्ति का सहयोग हो गया था। रुद्रसेन द्वितीय केवल ५ वर्ष राज्य कर सका और उसकी मृत्यु के साथ प्रभावती ने अपने पिता के संरक्षण में राज्य का भार सँभाला। सन् ४१० ई० में प्रभावती के द्वितीय पुत्र ने प्रवरसेन द्वितीय के नाम से राज्य भार सँभाला, और उसके

राज्यकाल ४४० ई० तक रहा। इस बीच किसी युद्ध का उल्लेख नहीं मिलता है, जिससे यह परिणाम निकाला जा सकता है कि प्रवरसेन द्वितीय का राज्यकाल शान्तिपूर्ण था और उसको साहित्य तथा कला प्रेम के लिये समय मिल सका होगा।[१]

वस्तुतः यही प्रवरसेन द्वितीय 'सेतुबन्ध' का रचयिता माना जा सकता है। रामटेक के रामस्वामी का इस वंश में अत्यधिक सम्मान था। इस वंश पर वैष्णव धर्म का प्रभाव अधिक था। प्रवरसेन ने वैष्णव होने के नाते विष्णु के अवतार के रूप में राम की कथा को अपने महाकाव्य का विषय बनाया है। आगे के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जायगा कि 'सेतुबन्ध' में विष्णु और उनके अवतारों का अत्यधिक महत्त्व है। जितनी पौराणिक कल्पनाएँ हैं वे प्रायः विष्णु के किसी न किसी अवतार से सम्बद्ध हैं। यहाँ तक कि सूर्य तथा यम का सम्बन्ध विष्णु से स्थापित किया जा सकता है। इन पौराणिक कथाओं के विकास, तथा इस महाकाव्य में चित्रित सांस्कृतिक वर्णनों से भी यही सिद्ध होता है कि इसकी रचना लगभग ५वीं शताब्दी में ही सम्भव हो सकती है। इस दृष्टि से इस महाकाव्य का वातावरण बाण की रचनाओं के अधिक निकट है।

इसके अतिरिक्त इस महाकाव्य के कथानक तथा शैली के निर्वाह से भी यही सिद्ध होता है कि इसकी रचना कालिदास के बाद तथा अन्य

---

१ कृष्ण कवि ने अपने 'भरत चरित' में प्रवरसेन को 'कुंतलेश' कहा है:—
जलाशयस्यान्तरगाढमार्गम्,
अलब्धरन्ध्रं गिरिचौर्यवृत्त्या।
लोकेष्वलं कान्तमपूर्वसेतुं
बबन्ध कीर्त्या सह कुन्तलेशः॥ १ : ४॥ और द्वितीय प्रवरसेन ही 'कुन्तलेश' कहे जा सकते हैं।



संस्कृत के महाकाव्यों के पूर्व हुई होगी। प्रकृति चित्रण की शैली से भी यही सिद्ध होता है। इसमें प्रकृति का जो रूप उपस्थित किया गया है, उससे स्पष्टतः यह जान पड़ता है कि इसका रचयिता दक्षिण का है, उत्तर का नहीं। इस प्रकार वाकाटक वंश के प्रवरसेन द्वितीय को 'सेतुबन्ध' का वास्तविक रचयिता मानने की ओर ही तर्क हमको ले जाते हैं।[1]

सेतुबन्ध की कथा का विस्तार

प्रथम आश्वास : 'सेतुबन्ध' में मंगलाचरण के रूप विष्णु तथा शिव की स्तुति की गई है (१-८)। इसके बाद कथा-निर्वाह की कठिनाई का उल्लेख (६), काव्य का माहात्म्य (१०), काव्य-निर्वाह की दुष्करता (११), कथा का संकेत (१२) है। मुख्य कथा का प्रारम्भ इस सूचना से होता है कि राम ने बालि का वध करके सुग्रीव को राजा बना दिया है और वर्षा-काल बीत चुका है। राम ने वर्षा-ऋतु को निष्क्रियता की स्थिति में क्लेशपूर्वक बिताया है (१३-१५)। शरद ऋतु का आरम्भ नवीन प्रेरणा के रूप में होता है, शरद का चित्रमय वर्णन (१७-३४) है। हनूमान को गये अधिक दिन हो जाने के कारण राम सीता-वियोग में दुःखी हैं (३५), हनूमान वापस आते हैं (३६), वे समाचार तथा मणि प्रदान करते हैं (३७-३९)। राम सीता की स्मृति से रोमांचित होते हैं, पर क्रुद्ध भी (रावण के प्रति) होते हैं (४०-४५), और अपने धनुष पर दृष्टि-पात करते हैं, इससे सुग्रीव को संतोष होता है (४६-४७)। लंकाभियान की भावना से राम की दृष्टि लक्ष्मण, सुग्रीव तथा हनूमान पर पड़ी (४८)। तदन्तर राम सेना सहित लंकाभियान के लिए यात्रा करते हैं और विन्ध्य, सह्य पर्वतों को पार करते हुए दक्षिण सागर-तट पर पहुँच जाते हैं (४९-६५)।

द्वितीय आश्वास : राम अपने सामने फैले हुए विराट सागर के अद्भुत सौन्दर्य को देखते हैं (१) और इसी रूप में सागर का वर्णन किया जाता है। सभी सागर को देख रहे हैं (२-३६)। सागर-दर्शन

१ इन समस्त तर्कों की स्थिति आगे के विवेचन से स्पष्ट हो जायगी

का प्रभाव सब पर भिन्न-भिन्न प्रकार का पड़ता है (३७-४२)। त्रस्त और आकुल वानरों का निश्चल नेत्र-समूह हनुमान पर पड़ा (४३-४५)। और वे अपने आपको किसी-किसी प्रकार ढाढ़स बंधा रहे हैं (४६)।

तृतीय आश्वास : 'समुद्र किस प्रकार लांघा जाए' इस भावना से चिन्तित वानरों को सम्बोधित करके सुग्रीव ने ओजस्वी भाषण दिया, जिसमें राम की शक्ति, अपनी प्रतिज्ञा तथा सैनिकों के वीर धर्म की भावना से वानर-सैन्य को उत्साहित करना चाहा (१-५०)। पर इस वीर-वाणी से भी कीचड़ में फँसे हाथी के समान जब सैन्य-दल नहीं हिला तब सुग्रीव ने पुनः कहना प्रारम्भ किया (५१-५२)। इस बार सुग्रीव ने आत्मोत्साह व्यक्त करके सेना को उत्साहित करना चाहा (५३-६३)।

चतुर्थ आश्वास : सुग्रीव के वचनों से निरुत्साह सेना जाग्रत हुई और उनमें लंकाभियान का उत्साह व्याप्त हो गया (१-२)। वानर सैन्य में हर्षोल्लास आ गया। ऋषभ ने कन्धे पर रखे हुए पर्वत-शृंग को चूर्ण कर दिया, नील रोमांचित हुए, कुमुद ने हास किया, मैन्द ने आनन्दोल्लास से चन्दन वृक्ष को झकझोर दिया, शरभ घनघोर गर्जन करने लगा, द्विविद की दृष्टि शीतल हुई, निषध के मुख पर क्रोध की लाली झलक आई, सुषेण का मुखमण्डल हास से भयानक हो गया, अंगद ने उत्साह व्यक्त किया, पर हनुमान शान्त हैं (३-१३)। अपने वचनों का प्रभाव देखकर सुग्रीव हँस रहे हैं, राम-लक्ष्मण रावण सहित सागर को तृण समझ कर नहीं हँसते। राम ने केवल सुग्रीव को देखा (१४-१६)। वृद्ध जाम्बवान् ने हाथ उठा कर वानरों को शान्त करते हुए और सुग्रीव की ओर देखते हुए कहना प्रारम्भ किया (१७-१९)। अपने अनुभवों के आधार पर जाम्बवान् ने शिक्षा दी कि अनुपयुक्त कार्य में नियोजित उत्साह उचित नहीं, जल्दबाजी करना ठीक नहीं (२०-३६)। पुनः राम की ओर उन्मुख होकर उन्होंने कहा कि तुम्हारे विषय में समुद्र क्या करेगा (३७-४१)। इस पर राम ने कहा कि इस किंकर्तव्यविमूढ़ता की स्थिति में कार्य की धुरी सुग्रीव पर ही अवलम्बित है। पुनः उन्होंने प्रस्ताव

किया कि पहले हम सब समुद्र की प्रार्थना करें, पर यदि वह फिर भी न माने तो मेरे क्रोध का भागी बनेगा (४२-५०)। इसी बीच आकाश मार्ग से विभीषण आता है, परिचित हनूमान उसको राम के सम्मुख प्रस्तुत करते हैं। चरणों पर झुके हुए विभीषण को राम ने उठा लिया और सुग्रीव ने पवनसुत द्वारा प्राप्त विश्वास से उसको आलिंगित किया। राम ने विभीषण की प्रशंसा करके उसका अभिषेक कर दिया (५१-६५)।

पंचम आश्वास : रात्रि-काल में चन्द्र-प्रकाश में राम सीता के वियोग से व्यथित हैं। वे दुःखित होकर मारुति से सीता की कुशल पूछते हैं। सीता को उपलक्ष्य करके राम वस्तुओं की चिन्ता करते हैं और क्लेश पाते हैं (१-८)। प्रातःकाल होता है, चारों ओर प्रकाश छा जाता है (९-१३)। जब अवधि बीतने पर भी समुद्र अचल रूप में स्थिर रहा तो राम को क्रोध आ गया और उन्होंने अपने धनुष पर बाण आरोपित किया। बाण के आरोपित किये जाने और खींचे जाने का वर्णन चलता है (१४-३२)। सागर पर बाण गिरता है (३३)। बाण की ज्वाला से सागर अत्यन्त संक्षुब्ध होता है और उसके सभी जीव जन्तु व्याकुल हो उठते हैं। उथल पुथल मच जाती है (३४-८७)।

षष्ठ आश्वास : व्याकुल सागर बाहर निकल कर राम के सम्मुख प्रणत होकर कहने लगा (१-९)। सागर ने प्रार्थना की उसकी मर्यादा की रक्षा हो, उसे सुखाया न जाय। उसने पर्वतों से सेतु-निर्माण का प्रस्ताव किया (१०-१७)। तब राम ने सुग्रीव को आज्ञा दी जो वानर सैन्य द्वारा ग्रहण की गई (१८-१९)। आज्ञा पाकर वानर सैन्य ने हर्षोल्लास के साथ प्रस्थान किया (१९-२८)। वानर पर्वतों को उखाड़ते हैं (३०-८१) और सागर तट की ओर ले आते हैं (८१-९५)। अन्त में वानर सैन्य सागर तट पर पहुंच जाता है (९६)।

सप्तम आश्वास : सेतु का निर्माण प्रारम्भ होता है। वानरों ने सागर-तट पर पर्वतों को कुछ क्षणों के लिए रख कर सागर में छोड़ना प्रारम्भ किया (१-२) पर्वतों के गिरने से सागर अत्यन्त विक्षुब्ध हो उठा

(३-५४)। सागर में गिरते हुए पर्वतों का दृश्य उपस्थित होता है (५५-६९)। वानरों के इस प्रकार प्रयत्नशील होने पर भी सेतु निर्मित नहीं हुआ और सारी सेना हतोत्साहित हो गई (७०-७२)।

अष्टम आश्वास : भारी-भारी पर्वत, फेंकने पर भी जब सागर नहीं बँधा तब वानर सेना ने निराश होकर लाये हुए पर्वतों को सागर तट पर ही फेंक दिया (१-२)। धीरे-धीरे सागर शान्त हो चला (३-१२)। सुग्रीव अपनी चिन्ता नल पर प्रकट करते हैं और शीघ्र सेतु निर्मित करने के लिए कहते हैं (१३-१७)। नल ने विश्वास दिलाते हुए वीर वचन कहे (१८-२६)। नल के वचनों से उत्साहित होकर वानर सेना पुनः पर्वतों को सागर में डालने चल पड़ी (२७)। नल ने नियमपूर्वक वर्णों को प्रणाम करके (अपने पिता विश्वकर्मा को प्रथम और बाद में राम तथा सुग्रीव को) सेतु-निर्माण प्रारम्भ किया (२८)। सेतु-पथ के बनाने के समय का सागर का दृश्य उपस्थित होता है (२९-६०)। आगे बनते हुए सेतु पथ का वर्णन किया गया है (६१-८१)। फिर सम्पूर्ण सेतु-पथ का रूप सामने आता है (८१-९६)। वानर सेना सेतु-पथ द्वारा सागर पार करती है और सुवेल पर्वत पर डेरा डालती है। वानर-सेना के उस पार पहुँच जाने से राक्षस रावण की आज्ञा की अवहेलना करने लगते हैं और राम का प्रताप बढ़ जाता है (९७-१०६)।

नवम आश्वास : वानर सेना सुवेल के रमणीय दृश्यों का अवलोकन करती है। चतुर्दिक प्रकृति की सुरम्यता का दृश्य है (१-२५)। सुवेल का सौन्दर्य आदर्श है (२६-६२)। पर्वतीय वन चारों ओर फैले हैं (६३-९६)।

दशम आश्वास : वानर सेना ने सुवेल की चोटियों पर डेरा डाला। राम के दृष्टिपात से सुवेल के साथ ही रावण काँप उठा (१-८)। सन्ध्या हुई और धीरे-धीरे अन्धकार हुआ और फिर चन्द्रोदय होने से चाँदनी फैल गई (९-५५)। प्रदोषकाल में निशाचरियों का संभोग प्रारम्भ होता है (५६-८२)।

एकादश आश्वासन : रात्रि बीत गई, पर रावण की काम-वासना शान्त नहीं हुई। वह काम व्यथा से पीड़ित है (१-२१)। रावण के मन में वानर सेना तथा सीता के विषय में तर्क-वितर्क चल रहा है और वह अन्त में निर्णय करता है कि सीता राम के कटे हुए सिर को देख कर ही वश में हो सकती है। वह सेवकों को बुला कर आदेश देता है और वे मायाशीश को लेकर सीता के पास पहुँचते हैं (२२-३६)। सीता विरहावस्था में व्याकुल हैं (४०-५०)। उसी समय राक्षस राम का मायाशीश सीता को दिखाते हैं। इस दृश्य का प्रभाव सीता पर अत्यन्त करुण पड़ता है (५१-६०)। सीता होश में आकर शीश को देखती हैं (६१-६४)। सीता भूमि पर गिर पड़ती हैं और शीश को देखने के लिए पुनः उठती हैं (६५-७४)। सीता मूर्च्छा से जाग कर विलाप करती हैं (७५-८६)। त्रिजटा सीता को आश्वासन देती है (८७-९९)। सीता विश्वास नहीं करतीं और विलाप करने लगती हैं। वे विलाप करते-करते मूर्च्छित हो जाती हैं। मूर्च्छा से जागने के बाद सीता मरने का निश्चय करती हैं। पर त्रिजटा पुनः आश्वासन देती है (१००-१३२)। सीता वानरों के प्रातःकालीन कल-कल नाद को सुन कर ही विश्वास कर पाती हैं कि यह राक्षसी माया है (१३३-१३७)।

द्वादश आश्वास : उसी समय प्रभात काल आ गया (१-११)। प्रातःकाल संभोग सुख त्यागने से राक्षस कामिनियों को क्लेश हो रहा है (१२-२१)। राम प्रातःकाल उठते हैं और युद्ध के लिए प्रस्थान करते हैं (२२-३१)। राम के साथ वानर सेना भी चल पड़ी (३२-३४)। सुग्रीव राम के उपकार से मुक्त होने के लिए चिन्तित होते हैं और विभीषण को राक्षस वंश की चिन्ता है (३५)। राम धनुष टंकारते हैं और सीता सुनती हैं (३६-३७)। वानर कल कल ध्वनि करते हैं (३८-४०)। इसको सुनकर रावण जागता है और अँगड़ाई लेता हुआ उठता है (४१-४४)। रावण का युद्धवाद्य बजना प्रारम्भ होता है (४५)। युद्ध को देखने की आकांक्षा से देवांगनाएँ विमानों में उत्सुक हो रही हैं (४६)। राक्षस जाग पड़ते हैं

और अपनी संभोग रत ललनाओं से अलग होते हैं (४६-५२)। वे युद्ध के लिए प्रस्थान करते समय कवच आदि धारण करते हैं (५३-६६)। उत्साह और आवेग से भरी हुई वानर सेना लंका को घेर लेती है और आक्रमण तथा ध्वस्त प्रारम्भ करती है (६८-८०)। राक्षस सेना प्रस्थान करती है (८१-९४)। राम और रावण की सेनाएँ आमने सामने उपस्थित होती हैं और युद्ध प्रारम्भ होता है (९५-९८)।

त्रयोदश आश्वास : सेनाओं में सघर्ष प्रारम्भ होता है और आक्रमण और प्रत्याक्रमण होते हैं और भयानक युद्ध होता है (१-८०)। विभिन्न योद्धाओं में द्वन्द्व-युद्ध होते हैं—सुग्रीव-प्रजङ्घ; द्विविद अशनिप्रभ; मैन्द वज्रमुष्टि, सुषेण-विद्युन्माली; नल तपन; पवनपुत्र जम्बुमाली के द्वन्द्व में राक्षस योद्धाओं का वध हुआ (८१-८६)। अंगद तथा इन्द्रजीत के द्वन्द्व युद्ध में इन्द्रजीत पराजित होता है (८७-९९)।

चतुर्दश आश्वास : रावण को सम्मुख न पाकर राम खिन्न होते हैं और वे राक्षसों पर बाणों का प्रहार करते हैं (१-१३), मेघनाद राम-लक्ष्मण को नागपाश में बाँधता है। नागपाश में बँधे हुए राम लक्ष्मण को देखकर देवता व्याकुल हो जाते हैं और वानर सेना किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाती है (१४-३६)। विभीषण के अभिमंत्रित जल से धुले नेत्रोंवाले सुग्रीव ने मेघनाद को देखकर उसका पीछा किया (३८-३९)। रावण को इस समाचार से प्रसन्नता हुई (४०), सीता ने मूर्च्छित राम को देखा (४१)। इधर राम की मूर्च्छा जब दूर हुई तब वे विलाप करने लगे। (४२-४८)। इस पर सुग्रीव ने वीर वचनों से सबको सान्त्वना दी (४९-५५)। राम गरुड़ का आवाहन करते हैं (५६)। गरुड़ का आगमन और नाग-पाश से मुक्ति (५७-६१)। हनुमान धूम्राक्ष द्वन्द्व और उसका निधन (६२-६९)। अकम्पन से युद्ध और उसका निधन (७०-७१); नल तथा प्रहस्त का द्वन्द्व और प्रहस्त का निधन (७२-८४)।

पंचदश आश्वास : सभी बन्धुजनों के निधन के बाद रावण अट्टहास करता हुआ रथ पर आरूढ होकर युद्धभूमि में प्रवेश करता है

(१-३)। वानर रावण को देखते हैं, रावण वानर सेना के सम्मुख आता है और उसको देखकर वानर पीछे भागते हैं (४-६)। नल वानरों को प्रोत्साहित करते हैं (७-८)। रावण राम को देखता है (९)। रामबाण से आहत होकर लंका भाग आता है और कुम्भकर्ण को जगाता है (१०-११)। असमय जागकर कुम्भकर्ण लंका से निकला, उसने लंका की खाईं पार की और वानर सेना भाग चली। उसने वानर सेना का नाश करना प्रारम्भ किया, परन्तु राम के बाणों के आघात से व्याकुल होकर उसने अपने-पराये सभी को खाना प्रारम्भ किया। अन्त में उसके हाथ और उसका सिर काट दिया गया और वह जमीन पर गिर पड़ा। कुम्भकर्ण की मृत्यु पर रावण अत्यन्त क्रुद्ध होकर मुख-समूह धुन रहा है (१२-२३)। वह युद्ध के लिए प्रस्थान करना चाहता है पर इन्द्रजीत उसे मना करके स्वयं रणभूमि में आता है (२४-३२)। नील तथा अन्य वानर उसे घेर लेते हैं और वह सब से युद्ध करता है (३३-३५)। विभीषण की मन्त्रणा के अनुसार लक्ष्मण उसे निकुम्भ नामक स्थान पर जाने से रोकते हैं और उसका वध करते हैं (३६-३७)। इन्द्रजीत की मृत्यु पर रावण रोता है (३८-३९) और वह रथारूढ़ होकर रणभूमि के लिए प्रस्थान करता है (४०-४२)। रावण की स्त्रियाँ प्रस्थान के समय रो पड़ती हैं (४३)। रावण वानर सेना को देखता है, विभीषण को देखता है (४४-४५)। वह लक्ष्मण पर शक्ति का प्रहार करता है (४६)। लक्ष्मण हनूमान द्वारा लाई हुई औषधि से ठीक होते हैं (४७)। राम इन्द्र के रथ को स्वर्ग से उतरते हुए देखते हैं (४८-५०)। राम ने मातलि से मिलकर इन्द्र के कवच को स्वीकार किया। वे कवच धारण करते हैं (५१-५४)। लक्ष्मण राम से रावण-वध करने की आज्ञा माँगते हैं, पर राम लक्ष्मण को यह अवसर न देकर स्वयं लेना चाहते हैं (५५-६१)। राम-रावण का युद्ध प्रारम्भ होता है, और राम रावण के सिरों और हाथों को काटते हैं पर वे पुनः निकल आते हैं। परन्तु अन्त में एक ही बाण से राम ने उसके दसों सिरों को काट गिराया। रावण की मृत्यु होती है (६२-८२)। रावण की लक्ष्मी तब भी उसे नहीं

छोड़ रही है (८८)। विभीषण रुदन करता है (८९-९०)। राम ने रावण के अन्तिम संस्कार की आज्ञा दी (९१)। सुग्रीव उपकार को चुका कर सन्तुष्ट हुए (९२)। राम ने विभीषण को लंका का राज्य दिया (९३)। अग्नि से विशुद्ध हुई सीता को लेकर राम अयोध्या लौट आये (९४)। ग्रन्थ समाप्ति (९५)।

सेतुबन्ध की कथा का आधार

'सेतुबन्ध' की कथा वाल्मीकीय रामायण से ग्रहण की गई है। क्योंकि कथा-विस्तार की दृष्टि से 'आदि रामायण' तथा 'सेतुबन्ध' की कथा में मौलिक अन्तर नहीं है। डॉ० कामिल बुल्के अपनी 'राम कथा' में इसकी कथावस्तु के सम्बन्ध में लिखते हैं — "'रावणवहो' के पंद्रह सर्गों में वाल्मीकि-कृत युद्धकाण्ड की कथावस्तु का अलंकृत शैली में वर्णन मिलता है। कथानक में कोई महत्त्वपूर्ण परिवर्तन नहीं किया गया है। सेतु बंधन के वर्णन में मछलियों के सेतु को नष्ट करने का उल्लेख है। आगे चल कर इस घटना के विषय में अनेक कथाओं की कल्पना कर ली गई है। 'रावणवहो' की एक विशेषता यह है कि 'कामिनी केलि' नामक दसवें सर्ग में राक्षसियों का संभोग वर्णन मिलता है। बाद में इस वर्णन का अनुकरण 'जानकी हरण', अभिनन्द कृत 'रामचरित', कम्बनकृत 'तमिल रामायण' तथा जावा के प्राचीनतम 'रामायण' आदि में किया गया है।" परन्तु प्रवरसेन ने 'आदि रामायण' से कथा लेकर उसको अपनी कल्पना से अधिक सुन्दर रूप प्रदान किया है। यह प्रभाव काव्य में बहुत साधारण परिवर्तनों तथा उद्भावनों में सम्पन्न किया है।

इस महाकाव्य का प्रारम्भ शरद ऋतु के वर्णन से हुआ है। इससे पूर्व केवल दो छंदों में कवि ने यह सूचना दी है कि राम ने बालि-वध करके सुग्रीव को राजा बना दिया है और निष्क्रियता की स्थिति में वर्षा-काल अत्यंत क्लेश के साथ बिताया है। 'आदि रामायण' में शरद वर्णन का स्थान किंचित भिन्न है। यह वर्णन किष्किन्धा के अन्तर्गत आया है। उसमें वर्षा तथा शरद ऋतुओं के वर्णन के बाद सीता की खोज के लिए

वानरों को भेजा गया है। यहाँ शरद् ऋतु के साथ ही हनूमान का प्रवेश होता है। शरत् काल के सुन्दर वर्णन के साथ यह प्रवेश अधिक कलात्मक बन पड़ा है :—

सुचिरं च अगणमां रआणुबद्धतिअककज्जोआणुज्जलन्तच्छाअम् ।
पेच्छइ मारुअतणअं मणोरहं जेम्ब चिन्तिअसुहोवणअन ॥१:३६॥

आशा-तन्तु के अन्तर्हित होने के कारण राम शरद के वातावरण से भी व्यथित हैं और उसी समय मनोरथ के समान हनूमान उपस्थित हो जाते हैं। उनका यह प्रवेश नाटकीय है। 'आदि रामायण' में शरद् का वर्णन किष्किन्धा काण्ड के सर्ग ३० में है और हनूमान का आगमन सुन्दर काण्ड के सर्ग ६८ में होता है। महाकाव्य में महा प्रबन्ध काव्य की विस्तृत कथावस्तु को काव्यात्मक ढंग से संक्षिप्त कर दिया है। इस प्रयोग के माध्यम से कवि ने समस्त कथा के सन्तुलन की रक्षा की है और साथ ही अपने महाकाव्य के कथा केन्द्र की स्थापना भी की है।

इसके बाद की 'सेतुबन्ध' में वर्णित समस्त कथा 'आदि रामायण' के लंकाकाण्ड के अन्तर्गत आती है। प्रस्तुत महाकाव्य में समाचार पाकर राम लंका अभियान के लिये वानर सेना के साथ चल पड़ते हैं, पर 'आदि रामायण' में कथा अपने मन्थर प्रवाह से चलती है। 'सेतुबन्ध' में सीता के क्लेश की बात सुनकर राम की भृकुटियाँ चढ़ जाती हैं, वे वीर-दर्प से धनुष को देखते हैं और दृष्टि से ही वे लंकाभियान की आज्ञा लक्ष्मण, सुग्रीव तथा हनूमान द्वारा प्रचारित करते हैं। पर वाल्मीकि के नायक राम पहले हनूमान की प्रशंसा करते हैं और फिर उसी समय उनके मन में सागर पार जाने की चिन्ता भी है :—

कथं नाम समुद्रस्य दुष्पारस्य महांभसः ।
हरयो दक्षिणं पारं गमिष्यंति समागताः ॥स० १;१७॥

राम की चिन्ता को दूर करने के लिए इसी प्रसंग में सुग्रीव प्रोत्साहित करते हैं (स० २), और हनुमान लंका की रचना का वर्णन करते हैं (स० ३)। मार्ग का वर्णन किंचित विस्तार से किया है, पर चतुर्थ सर्ग

में समाप्त हो जाता है। मार्ग में सह्यान्चल और मलयान्चल को पार कर वानर सेना महेन्द्र पर्वत पर पहुँची जहाँ से सागर दिखाई पड़ता है। 'सेतुबन्ध' का वर्णन संक्षिप्त है पर 'आदि रामायण' के समान ही है।

'सेतुबन्ध' में सागर-तट पर पहुँच कर सारी वानर सेना सागर के विस्तार को देखकर आश्चर्यचकित हो जाती है और सम्भ्रम दिखाई देता है। पर 'आदि रामायण' की कथा में समस्त सेना के व्यवस्थित होने के बाद राम लक्ष्मण से अपने सीता विषयक वियोगजन्य शोक का वर्णन करते हैं। 'सेतुबन्ध' के कवि ने अपनी कथा में सागर को इतना अधिक महत्त्व दिया है कि उसके सम्मुख अन्य किसी बात की चर्चा की नहीं जा सकी। आदि रामायण के लंकाकाण्ड के छठे सर्ग से सोलहवें सर्ग तक की कथावस्तु 'सेतुबन्ध' में अप्रासंगिक होने के कारण छोड़ दी गई है। इनमें रावण की सभा का वर्णन है। सत्रह, अठारह तथा उन्नीसवें सर्गों में राम से विभीषण के मिलने के प्रसंग का विस्तार है जो 'सेतुबन्ध' में केवल १५ छन्दों में उपस्थित कर दिया गया है। विभीषण को लेकर राम की सेना में जो तर्क-वितर्क 'आदि रामायण' में हुए हैं, 'सेतुबन्ध' में केवल उनका अत्यंत सूक्ष्म संकेत है। बीसवें सर्ग के रावण द्वारा दूत भेजे जाने का उल्लेख 'सेतुबन्ध' में नहीं है।

'सेतुबन्ध' में प्रायोपवेशन का प्रस्ताव राम द्वारा ही किया गया है। जाम्बवान् ने जब राम के सामर्थ्य का उल्लेख किया तब राम ने कार्य का उत्तरदायित्व सुग्रीव पर डालते हुए यह प्रस्ताव किया। परन्तु 'आदि रामायण' में सुग्रीव तथा हनूमान ने विभीषण से सागर सन्तरण का उपाय पूछा; और विभीषण से जानकर सुग्रीव ने राम से समुद्र की उपासना के लिए कहा (स० २०) 'सेतुबन्ध' के कवि ने प्रायोपवेशन काल में रात्रि की चाँदनी में राम के सीता वियोग का चित्रण किया है, जब कि 'आदि रामायण' में सागर-तट पर पहुँचते ही राम के वियोग-जन्य क्लेश का वर्णन विलाप रूप में किया गया है। आगे अवधि बीतने पर भी सागर के अचल रहने पर राम को रोष आता है, वे धनुष पर बाण

आरोपित कर चलाते हैं। सागर बाण से विकल हो राम के सम्मुख उपस्थित हो जाता है और सेतु-निर्माण का प्रस्ताव करता है (स० २१,२२)। यह सारा प्रसंग दोनों में समान है। 'आदि रामायण' में समुद्र ही नल का परिचय देता है, और तब नल अपना वृत्तान्त बताता है। इसके बाद इसी सर्ग बाईस में नल द्वारा सेतु की रचना हो जाती है और वानर सेना सागर पार उतर जाती है।

सेतु-रचना का यह प्रसंग 'सेतुबन्ध' में पर्याप्त विस्तार से वर्णित है। सागर प्रकट होकर पर्वतों से सेतु-निर्माण का प्रस्ताव अवश्य करता है, परन्तु 'आदि रामायण' के समान निश्चित विधि नहीं बताता। जब वानर-सेना सागर को पर्वतों से पाटते-पाटते थक जाती है, उस समय सुग्रीव नल से सेतु-रचना के लिए कहते हैं और नल विश्वकर्मा के पुत्र होने के कारण सेतु बनाने में सफल होता है। वस्तुतः जैसा इस महाकाव्य के नाम से स्पष्ट है कि इसकी प्रमुख घटना सेतु-निर्माण है, अतएव इसमें सागर-वर्णन, पर्वतोत्पाटन तथा सेतु-रचना आदि का वर्णन अधिक विस्तार से किया गया है। 'सेतुबन्ध' में कई आश्वासों में यह कथा-वस्तु चलती है, जब कि 'आदि रामायण' में केवल एक सर्ग में इतनी घटनाएँ एकत्र कर दी गई हैं।

आगे फिर 'आदि रामायण' के विस्तार को 'सेतुबन्ध' में छोड़ दिया गया है। सर्ग तेईस से लेकर तीस तक के प्रसंगों का उल्लेख प्रस्तुत काव्य में नहीं है जिनमें प्रमुखतः राम तथा रावण एक दूसरे की सैनिक शक्ति का पता चलाने का प्रयत्न करते हैं, विशेषकर रावण के दूतों की चर्चा है। 'सेतुबन्ध' में सुवेल पर वानर सेना के डेरा डालने के बाद रात में निशाचरियों के संभोग का वर्णन है। वस्तुतः यह 'सेतुबन्ध' के कवि की मौलिक कल्पना है, जहाँ तक राम-कथा का सम्बन्ध है। आगे चलकर इसी के आधार पर राम-कथा के अन्तर्गत राक्षसियों के संभोग की परम्परा का विकास हुआ है। 'भट्टि काव्य' सर्ग ११; 'रामायण काकाविन' सर्ग

१२: 'जानकीहरण' सर्ग १६; अभिनन्द कृत 'रामचरित' सर्ग १८; कम्बन-कृत 'रामायण' ६, २४; तथा 'रामलिंगामृत' सर्ग ८ में इस प्रसंग का विकास विशेष रूप से देखा जा सकता है। प्रस्तुत महाकाव्य में भी आश्वास ११ के अन्तर्गत रावण की काम व्यथा तथा आश्वास १२ के अन्तर्गत प्रात: वर्णन में भी सुरतोपरान्त कामिनियों की दशा का वर्णन किया गया है जिसका मुख्य दृष्टिकोण समान है। रात्रि में रावण राम के माया निर्मित सिर को सीता के पास भेजता है जिसे देख कर सीता की व्यथा का पार नहीं रह जाता। सीता बार-बार मूर्च्छित होती है और त्रिजटा आश्वासन देती है। 'आदि रामायण' में रावण राम का समाचार सुन कर घबरा जाता है और विद्युज्जिह्व नामक मायावी राक्षस से राम के सिर को रचना के लिए कहता है (स० ३१)। सिर को लेकर स्वयं रावण सीता के पास जाता है। सीता का विलाप विस्तार के साथ इसमें भी है (स० ३२), परन्तु त्रिजटा के स्थान पर विभीषण की पत्नी सरमा सीता को समझाती है (स० ३३), तथा सरमा रावण के गुप्त कार्यों की सूचना सीता को देती है (स० ३४)। 'आदि रामायण' में सरमा सीता को विश्वास दिलाने में इस प्रकार सफल होती है, पर इसमें सेना के घोर शब्द से सीता के विश्वास को दृढ़ किया गया है। 'सेतुबन्ध' में त्रिजटा सीता को अन्ततः तभी विश्वास दिला पाती है जब वह वानर सेना का कलकल नाद सुनती है :—

माआमोहम्मि गए सुए अ पवआण समरसंणाहरवे।
जणअतणआइ दिट्ठं तिअडावअणाणुराअभणिअस्स फलम्॥ ११:१३७॥

'आदि रामायण' का माल्यवान प्रसंग भी 'सेतुबन्ध' में नहीं लिया गया है (स० ३५, ३६)। आगे युद्ध के विभिन्न वर्णनों में अनेक स्थलों पर संक्षेप तथा परिवर्तन किया गया है। अधिकांश परिवर्तन 'आदि रामायण' के वर्णनों को संक्षिप्त करने की दृष्टि से हुए हैं। 'सेतुबन्ध' में प्रातःकाल से निश्चित युद्ध प्रारम्भ हो जाता है और राम-रावण की सेनाएँ आमने-सामने आ जाती हैं। बीच-बीच में प्रमुख प्रमुख सेना

पतियों और योद्धाओं के युद्ध और मरण का चित्रण भी किया गया है। पर 'आदि रामायण' में युद्धारम्भ का क्रम इस प्रकार है। सर्ग ३७ मे राम वानर सेना की व्यूह रचना करते हैं, सर्ग ३८ मे सुवेल पर्वत पर चढ़ते है। वे सब वहाँ से लका की शोभा देखते हैं (स० ३९)। वस्तुतः 'सेतुबन्ध' मे केवल सुवेल के सौन्दर्य का वर्णन (आ० ९) किया गया है। सुग्रीव और रावण का द्वंद्व होता है (स० ४०)। तदनन्तर लंका-वरोध प्रारम्भ होता है, लेकिन इसी बीच अंगद दूत-कार्य के लिए रावण की सभा मे जाते है (स० ४१)। वस्तुतः 'आदि रामायण' मे प्रमुख रूप मे युद्ध का आरम्भ सर्ग ४८ से होता है। उसके पूर्व की सभी घट-नाएँ 'सेतुबन्ध' में नहीं ली गई हैं।

'सेतुबन्ध' मे युद्ध-वर्णन के क्रम मे मौलिक अन्तर नहीं है। परन्तु महाकाव्य में महाप्रबन्ध काव्य के विस्तार को संक्षिप्त करना स्वाभाविक था। इसी दृष्टि से कवि ने आदि कथा की अनेक बातो और घटनाओं को छोड़ दिया है या उनको संक्षित करके प्रस्तुत किया है। 'सेतुबन्ध' के आश्वास १३ का द्वंद्व युद्ध प्रायः 'आदि रामायण' के स० ४३ के समान है। इनमें कुछ वीरों के जोडे भी समान हैं जैसे—अंगद-इन्द्रजीत, हनू-मान-जम्बुमाली, मैन्द-वज्रमुष्टि, द्विविद-अशनिप्रभ, नल-प्रतपन, सुषेण-विद्युन्माली। कुछ अन्तर भी है जैसे 'आदि रामायण' में सुग्रीव-प्रघस, सम्पाति-प्रजङ्घ, लक्ष्मण-विरूपाक्ष का द्वद्व वर्णित है। मेघनाद के युद्ध का वर्णन दोनो में समान है और इसी प्रकार मेघनाद राम-लक्ष्मण को नागपाश मे भी बाँधता है। मूर्च्छित भाइयों को सीता को दिखलाये जाने का उल्लेख 'सेतुबन्ध' में है, परन्तु 'आदि रामायण' मे सीता को पुष्पक विमान मे चढ़ा कर संग्राम-भूमि में गिरे हुए दोनो भाइयो को दिखाया जाता है। इस प्रसंग मे त्रिजटा सीता को समझाती है (सर्ग ४७, ४८)। राम का मूर्च्छा से जागने पर विलाप दोनों काव्यों मे है (स० ४९)। सुग्रीव का वीर-दर्प भी दोनों मे समान है परन्तु 'सेतुबन्ध' मे अधिक

 है इसके बाद 'आदि रामायण' में विभीषण सुग्रीव सुषेण

आदि के वार्तालाप के मध्य में गरुड़ का प्रवेश आकस्मिक रूप से होता है, और वे दोनों भाइयों को स्वस्थ कर देते हैं। बाद में राम द्वारा पूछे जाने पर गरुड़ अपना परिचय देते हैं (स० ५०)। जबकि 'सेतुबन्ध' में विभीषण के यह संकेत करने पर कि ये सर्प बाण हैं, राम स्वयं गरुड़ का आवाहन करते हैं।

रावण को जब समाचार मिलता है तब वह दुःखी होकर धूम्राक्ष को भेजता है। युद्ध में धूम्राक्ष का हनुमान द्वारा वध होता है (स० ५१, ५२)। हनुमान द्वारा वज्रदंष्ट्र का भी वध होता है, परन्तु 'सेतुबन्ध' में यह प्रसंग नहीं है (स० ५३, ५४)। हनूमान ही अकम्पन का द्वंद्व युद्ध में वध करते हैं (स० ५५, ५६)। 'सेतुबन्ध' में नल प्रहस्त का द्वंद्व होता है, परन्तु 'आदि रामायण' में नील द्वारा प्रहस्त का निधन होता है (स० ५७, ५८)। इसके बाद रावण स्वयं युद्ध भूमि में जाता है और हार कर वापस लंका लौट आता है, यह दोनों में समान है (स० ५९)। इसी प्रकार लौट कर वह कुम्भकर्ण को जगाता है। 'आदि रामायण' में यह प्रसंग एक विस्तृत सर्ग (स० ६०) में है और उसको रावण की आज्ञा से राक्षस जगाते हैं, जबकि 'सेतुबन्ध' में रावण द्वारा ही वह जगाया जाता है। असमय जगने के कारण उसके बढ़े हुए क्रोध का वर्णन दोनों में है। 'आदि रामायण' में राम के पूछने पर विभीषण उसके बल और पराक्रम का वर्णन करते हैं (स० ६१)। इसके सर्ग ६२ में रावण ने कुम्भकर्ण के सम्मुख सारी परिस्थिति रक्खी। अनन्तर कुम्भकर्ण ने रावण को नीति की शिक्षा दी, परन्तु रावण के क्रुद्ध होने पर उसने अपने पराक्रम के कथन द्वारा उसको आश्वासन दिया (स० ६३)। इस बीच महोदर मंत्रणा देकर रावण को सीता-प्राप्ति का उपाय सुझाता है (स० ६४)। अगले तीन सर्गों में कुम्भकर्ण के युद्ध का सविस्तार वर्णन है जिसके अन्त में वह राम द्वारा मारा जाता है। इनमें से 'सेतुबन्ध' में केवल युद्ध और उसके वध का संक्षेप में वर्णन है। कुम्भकर्ण के वध पर रावण के विलाप और रुदन का वर्णन समान है

(स० ६८)। 'आदि रामायण' मे त्रिशरा, अतिकायी, देवान्तक, नरान्तक, महोदर तथा महापार्श्व, इन छः वीरों की युद्ध-यात्रा से लेकर इनके वध तक का प्रसंग विशिष्ट है जो प्रस्तुत काव्य में नहीं है (स० ६६-७१)।

'सेतुबन्ध' मे रावण कुम्भकर्ण के वध के बाद युद्ध के लिए स्वयं तैयार होता है और उसी समय इन्द्रजीत इसे मना करके स्वयं युद्ध-भूमि मे जाता है। पर 'आदि रामायण' मे उपर्युक्त छहों वीरों की मृत्यु के बाद रावण अत्यन्त चिन्तित है, उसी समय इन्द्रजीत पिता से युद्ध के लिए आज्ञा माँगता है (स० ७२)। 'सेन्तुबन्ध' में मेघनाद-युद्ध की कथा भी सक्षिप्त की गई है। ये अंश 'सेतुबन्ध' मे नहीं हैं—इन्द्रजीत का अदृष्य युद्ध, राम-लक्ष्मण का ब्रह्मास्त्र से मूर्च्छित होना (स० ७३); हनूमान का ओषधि लाना और सबको स्वस्थ करना (स० ७४); सुग्रीव की आज्ञा से लंका का भस्म किया जाना (स० ७५); मुख्य-मुख्य वीरों का द्वन्द्व-युद्ध; निकुंभ का मरण (स० ७७) . . राक्ष की युद्ध-यात्रा और उसका वध (स० ७८,७६)। इतने अवान्तर के बाद मेघनाद के अन्तर्द्धान होकर युद्ध करने का पुनः वर्णन किया गया है (स० ८०)। इसी बीच 'आदि रामायण' मे इन्द्रजीत युद्ध-भूमि में राम के सम्मुख माया सीता का वध करता है (स० ८१) और इसी के अनुकूल इस समाचार को सुनकर राम मूर्च्छित हो जाते है और लक्ष्मण उनको सान्त्वना देते हैं (स० ८३)। पर 'सेतुबन्ध' मे विभीषण की मंत्रणा से लक्ष्मण मेघनाद को निकुम्भ नामक स्थान पर जाने से रोकते है जबकि 'आदि रामायण' में मेघनाद निकुम्भिला मे जाकर यज्ञ करता है (सं० ८२) और विभीषण की सलाह से लक्ष्मण सेना सहित वहाँ जाकर मेघनाद का यज्ञ ध्वस्त कर उसका वध करते है (सं० ८४-६१)। प्रसंग को अधिक विस्तार दिया गया है; इसमें एक महत्वपूर्ण बात यह है कि मेघनाद और विभीषण एक दूसरे को धिक्कारते हैं (स० ८७)। रावण का विलाप तथा रुदन पुनः दोनों मे वर्णित है (स० ६३)। रावण द्वारा सेना का युद्ध भूमि मे भेजा जाना

तथा राक्षसियों का विलाप 'सेतुबन्ध' में नहीं है (स० ९४,९५)। रावण युद्ध-भूमि के लिए प्रस्थान करता है (९६)। इस बीच फिर 'आदि रामायण' की ये घटनाएँ अतिरिक्त हैं— विरूपाक्ष, महोदर तथा महापार्श्व का युद्ध तथा वध (स० ९७-९९)। इसके बाद रावण का युद्ध प्रारम्भ होता है (स० १००), रावण की शक्ति से लक्ष्मण मूर्च्छित होते हैं पर हनूमान द्वारा (पर्वत से) लाई हुई औषधि से लक्ष्मण आरोग्य होते हैं (स० १०१, १०२), संक्षेप में इस कथा का उल्लेख 'सेतुबन्ध' में हुआ है। मातलि द्वारा इन्द्र अपना रथ भेजते हैं। राम उसका कवच आदि धारण कर रथ पर चढ़ते हैं और युद्ध प्रारम्भ होता है (स० १०३)। रावण-वध की कथा भी 'सेतुबन्ध' में संक्षिप्त है, पर 'आदि रामायण' के कई सर्गों में फैली हुई है—सर्ग १०४ में रावण अत्यधिक मूर्च्छित होता है, सर्ग १०५ में वह अपने सारथि से कठोर वचन कहता है और वह रावण को समझाता है (स० १०५); अगस्त्य मुनि राम को आदित्य हृदय स्तोत्र सिखाते हैं (स० १०६); शकुन-अपशकुन का वर्णन (स० १०७); राम-रावण द्वन्द्व-युद्ध (सं० १०८) से कथावस्तु पुनः 'सेतुबन्ध' में समान है। रावण के सिर कट-कट कर बढ़ते जाते हैं, अन्त में राम ने बाण (ब्रह्मास्त्र) से रावण के हृदय को विदीर्ण कर डाला (स० ११०)। 'सेतुबन्ध' में किञ्चित अंतर है कि राम एक ही बाण से उसके दसों सिरों को काट डालते हैं। रावण-वध के बाद 'सेतुबन्ध' (रावण-वध) की कथा समाप्त हो जाती है। केवल 'आदि रामायण' के समान विभीषण के रुदन तथा रावण के (विभीषण द्वारा) अन्तिम संस्कार का उल्लेख और किया गया है। अन्त में कवि ने इस बात का संकेत भी कर दिया है कि अग्नि शुद्धि के बाद सीता सहित राम पुष्पक विमान पर अयोध्या लौट आये।

महाकाव्य के रूप में सेतुबन्ध

महाकाव्यों का सर्गबन्ध करने की परम्परा बहुत प्राचीन है। महाभारत की कथावस्तु का विभाग प्रसंगों और पर्वों में है, परन्तु रामायण की कथावस्तु काण्डों में विभाजित होकर सर्गों में विभाजित है। 'आदि रामायण' एक ही

कवि द्वारा रचित काव्य माना जाता है, इसमे यह कल्पना सहज मे की जा सकती है कि सर्गबन्ध काव्यों की परम्परा का विकास वाल्मीकि रामायण से हुआ है। काव्यशास्त्र मे महाकाव्यों की परिभाषा निर्धारित होने के पूर्व महाकाव्यों की निश्चित परम्परा विकसित हो चुकी थी। आचार्य भामह ने सर्व प्रथम महाकाव्य की परिभाषा दी है और बाद मे दण्डी, हेमचन्द्र, विद्यानाथ तथा विश्वनाथ आदि आचार्यो ने उन्ही का प्रायः अनुसरण किया है। भामह के पूर्व अश्वघोष के 'बुद्ध-चरित', 'सौन्दरनन्द' तथा कालिदास के 'कुमारसम्भव', 'रघुवंश' महा-काव्यों की रचना हो चुकी होगी। परन्तु यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि इन काव्यों को प्रारम्भ से महाकाव्य कहा जाता था या नही। सातवीं शताब्दी के कवि माघ ने अपने 'शिशुपाल वध' मे काव्य के इस रूप का उल्लेख अवश्य किया है :—

विषमं सर्वतोभद्रचक्रगोमूत्रिकादिभिः।
श्लोकैरिव महाकाव्यं व्यूहैस्तदभवद्दलभम् ॥१४:४१॥

और इसी समय तक काव्यशास्त्र ग्रन्थों मे भी साहित्य के इस रूप की व्याख्या-विवेचना की जाने लगी थी।

महाकाव्य की प्रमुख विशेषताओ मे उसका सर्गबन्ध होना कहा गया है। भामह ने 'सर्गबन्धो महाकाव्यं' कहा है, दण्डी ने सर्गों के अधिक विस्तृत न होने का निर्देश किया है। विश्वनाथ के अनुसार महाकाव्य में आठ सर्ग से अधिक होने चाहिए और प्रत्येक सर्ग के अन्त मे अगले सर्ग की कथा का संकेत निहित होना चाहिए। भामह के अनुसार नायक ऐश्वर्यशाली और प्रसिद्ध होना चाहिए और उसका वर्णन वंश-परिचय, उसकी शक्ति तथा योग्यता मे प्रारम्भ करना चाहिए और समस्त महा-काव्य में उसका महत्त्व बना रहना चाहिए। दण्डी ने नायक को महान और विद्याबुद्धि से युक्त माना है और रुद्रट के अनुसार नायक राजा होता है। वह ऐतिहासिक व्यक्ति हो सकता है और काल्पनिकव्यक्ति भी। वह धर्म, अर्थ तथा काम को प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील होता है।

वह वीर विजयी तथा गुणी होता है। उसका प्रतिनायक भी शूर तथा गुणी होना चाहिए और यशस्वी वंश का होना चाहिए। विश्वनाथ का कहना है कि नायक देवता अथवा किसी प्रसिद्ध क्षत्रिय कुल का होना है और कभी-कभी एक वंश के कई राजा कथानायक होते हैं। सम्भवतः विश्वनाथ की दृष्टि मे 'रघुवंश' जैसे महाकाव्य थे जब उन्होंने कई नायकों की सम्भावना महाकाव्य मे बतलाई है।

भामह के अनुसार महाकाव्य की कथावस्तु नायक के चरित्र को प्रस्तुत करती है। कथावस्तु मे पाच सन्धियाँ (नाटक के समान) मानी गई है। नायक की मृत्यु का उल्लेख वर्जित है। दण्डी ने भी सन्धियों को स्वीकार किया है, पर उन्होंने कथावस्तु के ऐतिहासिक होने पर बल दिया है। नायक को अपने प्रतिद्वन्द्वी से युद्ध में सफलता मिलनी चाहिए, इस विषय मे लगभग सभी काव्य शास्त्री सहमत हैं। रुद्रट के अनुसार महाकाव्य की कथावस्तु काल्पनिक भी हो सकती है और यथार्थ भी, अथवा कुछ यथार्थ और कुछ काल्पनिक। हेमचन्द्र तथा विश्वनाथ कथा वस्तु के विकास मे पाचों नाटकीय सन्धियों के प्रयोग को स्वीकार करते हैं।

रस, अलंकार तथा छन्दों के सम्बन्ध में भी काव्य-शास्त्र में निश्चित निर्देश हैं। महाकाव्यों मे सभी प्रमुख रसो को स्थान मिलना चाहिए। विश्वनाथ ने अवश्य महाकाव्य मे वीर, शृंगार तथा शांत रसों मे से एक को प्रमुखतः स्वीकार किया है। सभी काव्य-शास्त्रियो ने महाकाव्य की शैली को अलकृत माना है, और अनेक छन्दों के प्रयोग को स्वीकार किया है। दण्डी के अनुसार सर्ग के अन्त में छन्द बदलना है। हेमचन्द्र तथा विश्वनाथ के अनुसार प्रत्येक सर्ग में एक छन्द रहता है परंतु कुछ सर्गों मे छन्दों की विविधता भी रहती है। महाकाव्य के रूप मे वर्णनों का निर्देश भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। दण्डी ने सर्वप्रथम वर्णनों की सूची दी है :—

नगरार्णवशैलर्तुचन्द्रार्कोदयवर्णनैः।
उद्यानसलिलक्रीडामधुपानरतोत्सवैः॥

भामह ने सभा, दूत-कार्य, युद्ध-यात्रा, युद्ध तथा नायक का अभ्युदय आदि का उल्लेख पहले ही किया था। परन्तु कथा-विस्तार के साथ वर्णनो के सजाने की प्रकृति जिस प्रकार महाकाव्यों में बढ़ती गई है, उसी के अनुसार काव्य-शास्त्रो मे उनका निर्देश भी हुआ है। बाद के कवियों ने तो अपने महाकाव्यों मे शास्त्रों के अनुसार वर्णनो को जानबूझ कर सजाया है और उसके लिए कथा-वस्तु की अवहेलना भी की है।

'सेतुबन्ध' महाराष्ट्री प्राकृत का महाकाव्य है। इसकी कथा पन्द्रह आश्वासो में समाप्त हुई है। प्राकृत महाकाव्यो में सर्ग के स्थान पर आश्वास का प्रयोग होता है। हेमचन्द्र ने इस बात का निर्देश किया है। इनके अनुसार इन विभागों को संस्कृत मे सर्ग, प्राकृत में आश्वास, अपभ्रंश मे सन्धि तथा ग्राम्यभाषा मे अवस्कन्ध कहते है। 'सेतुबन्ध' की कथा प्रसिद्ध रामायण की कथा से ली गई है। राम इसके योग्य नायक हैं, उनमे नायक के सभी गुण विद्यमान हैं। यह महाकाव्य वीर रस प्रधान है, पर शृंगार, करुण रस आदि भी स्थान-स्थान पर अभिव्यक्त हुए है। इसकी शैली सस्कृत की अलंकृत शैली ही है। कल्पना और सौन्दर्य-सृष्टि की दृष्टि से 'सेतुबन्ध' संस्कृत के सर्वश्रेष्ठ महाकाव्यों के समकक्ष रखा जा सकता है।

परन्तु 'सेतुबन्ध' उन महाकाव्यो के अन्तर्गत आता है जिनके आधार पर काव्य-शास्त्र के लक्षण भले ही निर्धारित किये गये होंगे, पर उनकी रचना काव्य-शास्त्र के लक्षणों को दृष्टि मे रखकर नहीं हुई है। साथ ही यह भी स्पष्ट जान पड़ता है कि 'सेतुबन्ध' की रचना के समय कालिदास जैसे महाकवि के महाकाव्य उदाहरण रूप मे अवश्य रहे होंगे। अश्वघोष तथा कालिदास के महाकाव्यो में वर्णन का आग्रह इतना नही है कि मुख्य कथा-वस्तु के सूत्र एकदम छोड़ दिये जायें अथवा कथा के विकास की नितान्त अपेक्षा की जाय। इस दृष्टि से प्रवरसेन ने अपने महा-

काव्य से प्रबन्ध-कल्पना को अधिक महत्त्व दिया है। यह भिन्न बात है कि 'सेतुबन्ध' की कथावस्तु में कवि को स्वतः ही वर्णना का अधिक अवसर मिल गया है। वस्तुतः देश काल का वर्णन कथा को आधार तथा वातावरण प्रदान करने के लिए ही अपेक्षित होता है। परन्तु काव्यात्मक दृष्टि से देश काल के नानाविध प्राकृतिक सौन्दर्य के प्रति कवि का आकर्षित होना भी स्वाभाविक है। 'आदि रामायण' के कवि का प्रकृति के प्रति आकर्षण इसी सीमा तक है। फिर क्रमशः काव्योत्कर्ष के स्तर पर प्रकृति का सौन्दर्य वर्णना की प्रेरणा बन गया। अश्वघोष में और प्रमुखतः कालिदास में प्रकृति का सौन्दर्य स्वतः कवि की कल्पना को प्रोत्साहित करता है। फिर भी कालिदास ने अपने महाकाव्यों में कथा-सूत्र कहीं भी टूटने नहीं दिया है। प्रकृति के प्रत्येक वर्णन को कथा के प्रवाह में इस प्रकार संजो दिया है कि वह उसका अंग बन गया है।

कथानक के विकास की दृष्टि से तथा प्राकृतिक वर्णना को प्रस्तुत करने की दृष्टि से प्रवरसेन कालिदास के अत्यधिक निकट हैं। इतना ही नहीं, 'सेतुबन्ध' की कथावस्तु के चयन में प्रवरसेन ने स्वतः इस बात का ध्यान रखा है। जो विस्तृत वर्णना इस महाकाव्य में पाई जाती है, उसमें से अधिकांश प्रमुख घटना अर्थात् 'सेतुबन्ध' का रूप है। अतः उस अंश को प्रकृति की स्वतन्त्र अथवा मुक्त वर्णना नहीं कहा जा सकता। इस महाकाव्य में मुख्य दो घटनाएँ हैं—प्रथम सेतुबन्धन और द्वितीय रावण-वध। इन्हीं दोनों के नाम पर इसका नामकरण 'सेतुबन्ध' तथा 'रावण-वध' हुआ है। वस्तुतः जिस उत्साह और विस्तार से सेतु रचना का वर्णन कवि करता है, उससे यही लगता है कि इस महाकाव्य का परिणाम रावण-वध भले ही हो, पर इसका घटना केन्द्र सेतु-रचना ही है। इसका यह नाम अधिक प्रसिद्ध रहा है, इससे भी यही सिद्ध होता है कि कवि ने मुख्य कथा-वस्तु सेतु-रचना को चुना है, रावण वध तो उसकी अनिवार्य परिणति है। समस्त महाकाव्य में लगभग सात आश्वासों (दूसरे से लेकर आठवें तक) में सेतु-रचना का प्रसंग है, क्योंकि युद्ध का

वर्णन अन्तिम तीन आश्वासों में है। इन दोनों अंशों में भी कथा का आग्रह और विकास समुचित रूप में पाया जाता है। वर्णन प्रथम अंश में अपेक्षाकृत अधिक है, पर, जैसा हम देखेंगे, इसमें से अधिकाश वर्णन कथा के लिए प्रासंगिक ही नहीं वरन् उसका घटनात्मक अंग भी है। दूसरे अंश में घटनाएँ पर्याप्त गति से संचालित हुई हैं। कथात्मक संगटन तथा घटनात्मक विकास में संस्कृत का कोई भी महाकाव्य इसकी तुलना में नहीं ठहर सकता।

प्रारम्भ में कवि ने विष्णु तथा शिव की स्तुति मगलाचरण के रूप में की है और कथा-निर्वाह की कठिनाई का निर्देश किया है। इस संबंध में 'रघुवंश' के वर्णन करने में कालिदास के संकोच का स्मरण आ जाता है। इसके बाद कवि नाटकीय ढंग से कथा को प्रस्तुत करता है। कवि यह समाचार दे कर कि राम ने बालि का वध करके सुग्रीव को राजा बना दिया है और उन्होंने वर्षा काल निष्क्रियता की स्थिति में क्लेश से काटा है, कथा की स्थापना के रूप में शरद-वर्णन करता है। परन्तु यह वर्णन महाकाव्यो में ऋतुओ के वर्णन की परम्परा से भिन्न है। इस महाकाव्य में ऋतु के रूप में केवल इसी ऋतु का वर्णन है और यह भी कथानक का अग है। शरद ऋतु के सुन्दर और सुखद वातावरण के विरोध में राम का विरहजन्य क्लेश बढ़ता है। परन्तु कवि ने इसी स्थल पर हनुमान का प्रवेश कराया है। हनूमान का यह प्रवेश नाटकीय है। यहाँ की समस्त घटना को कवि कलात्मक ढंग से प्रस्तुत करता है और इसी कारण बहुत संक्षेप में उसने सारी परिस्थिति को सँभाल लिया है। यात्रा के बीच मार्ग-वर्णन में प्रवरसेन ने कालिदास के समान संक्षेप तथा संकेत से काम लिया है।

सागर-तट पर पहुँचते ही कवि ने सेतु-रचना के लिए विस्तृत भूमिका तैयार करनी प्रारम्भ की है, जैसे अभी तक की घटनाएँ केवल कथा-प्रवेश की अंग थीं। यहाँ सागर का वर्णन महाकाव्यों में निर्दिष्ट सागर-वर्णन के रूप में नहीं है। इस महाकाव्य में सागर कथा का अग है और

इस कारण उसका वर्णन, वानरों पर उसका प्रभाव आदि, कथानक के अन्तर्गत आयेगा। सुग्रीव का ओजस्वी भाषण, जाम्बवान् की शांत वाणी आदि का प्रयोग करके कवि ने महाकाव्य की कथावस्तु को अधिक आकर्षक तथा प्रवाहपूर्ण बनाया है। विभीषण के आगमन के प्रसंग को संक्षिप्त करके कवि ने प्रमुख कथा के विकास को अबाधित रखा है। कथा अग्रसर होती है और सागर सेतु-पथ निर्माण का प्रस्ताव करता है। यहाँ कवि आदि कवि के समान सागर द्वारा नल से सेतु-निर्माण की योजना का प्रस्ताव नहीं कराता। पहले वानर सेना पर्वत लेने जाती है, पर्वतों को उखाड़ कर आकाश मार्ग से लाकर सागर में डालती है। और इस प्रकार जब कार्य की सिद्धि नहीं होती और वानर थक कर शिथिल तथा हताश हो जाते हैं, तब सुग्रीव नल से सेतु-निर्माण की प्रार्थना करते हैं। अनन्तर वानर पुनः उत्साहित होकर पर्वत लाते हैं और नल सेतु-पथ का निर्माण करते हैं। इस बीच में पर्वतों, नदियों, वनों आदि का विस्तृत वर्णन है पर, जैसा कहा गया है, यह सब सेतु-पथ के निर्माण का अंग बन गया है।

दक्षिण सागर-तट पर पहुँच जाने के बाद सुवेल पर्वत का अवश्य विस्तार के साथ वर्णन किया गया है। कथा के विकास की दृष्टि से इतना लम्बा वर्णन व्यवधान उत्पन्न करने वाला ही कहा जायगा। परन्तु सेतु-निर्माण के कठिन कार्य के सम्पन्न होने के बाद और राम-रावण के कठिन युद्ध के प्रारम्भ होने के पूर्व यह अन्तराल कथा के लिए, जैसे एक उचित विराम बन गया है। इसके बाद पुनः घटनाएँ क्षिप्रगति से आगे बढ़ने लगती हैं और कवि ने व्यर्थ के वर्णनों से अपनी कथा को कहीं भी शिथिल नहीं होने दिया है। दसवें आश्वास में सायंकाल, रात्रि, चन्द्रोदय के वर्णन किञ्चित विस्तार से हैं। परन्तु इनका उपयोग कवि ने राक्षस कामिनियों के संभोग-वर्णन के आधार रूप में किया है। पर संभोग शृंगार का यह प्रसंग भी कथानक में कहाँ तक उपयुक्त है—यह भी प्रश्न उठ सकता है। निश्चय ही यह अंश वर्णन के मोह से जोड़ा

गया है जो किसी परम्परा के अनुसार रखा गया होगा। साथ ही इस प्रसग के साथ रावण की काम-पीड़ा को जोड़ा जा सकता है जिसके परिणाम स्वरूप सीता के सम्मुख राम के माया शीश के प्रस्तुत किये जाने का प्रसंग है। और यह घटना 'सेतुबन्ध' के कथानक में काफी सजीव सिद्ध हुई है। कवि ने इस प्रसंग में अपने काव्य-कौशल तथा अनुभूति दोनो का परिचय दिया है। बारहवें आश्वास का प्रातःकाल वर्णन सन्निहित है जो युद्ध-प्रारम्भ की समुचित पीठिका प्रदान करता है।

इस प्रकार प्रवरसेन के इस महाकाव्य मे कथानक का आग्रह सदा बना रहता है। घटनाओं के क्रम मे अन्य वर्णन आ गये है। वर्णन के लिए वर्णन की जो प्रवृत्ति बाद के महाकाव्यो मे विकसित हुई है वह 'सेतुबन्ध' मे नही पाई जाती। इसका घटना क्रम सुचिन्तित और सगठित है। 'आदि रामायण' और इसकी कथावस्तु की तुलना से भी यही बात स्पष्ट हो जाती है। प्रवरसेन ने केवल उन्हीं घटनाओ को चुना है जिनसे कथानक की गति तेज़ रहे और अनेक घटनाओं तथा प्रसंगो को इसी उद्देश्य से संक्षिप्त कर दिया है। जैसा आगे स्पष्ट होगा, 'सेतुबन्ध' अलंकृत काव्य होने पर भी उसमे चमत्कार-वादिता तथा ऊहात्मकता का आग्रह नहीं है। इसकी कल्पना मे सौन्दर्य की रक्षा सदैव हुई है। इस दृष्टि से 'सेतुबन्ध' प्रारम्भिक महाकाव्यो मे ही गिना जायगा, जैसा कि इसके रचनाकाल से भी सिद्ध है।

सेतुबन्ध के चरित्र और उनका व्यक्तित्व

'सेतुबन्ध' की कथावस्तु 'आदि रामायण' से ली गई है, अतएव उसके समस्त चरित्र आदि कवि के चरित्र है। परन्तु जिस प्रकार प्रवरसेन ने कथावस्तु को अपने काव्य के अनुरूप बनाकर स्वीकार किया है, उसी प्रकार उन्होने चरित्रों को भी किञ्चित भिन्न रूप प्रदान किया है। और न केवल इन चरित्रो को एक पूर्णव्यक्तित्व प्रदान किया है, वरन् उनकी सूक्ष्म भावनाओं के चित्रण मे भी कवि ने सफलता प्राप्त की है। प्रबन्ध काव्यों मे चरित्रों का विस्तार जीवन-व्यापी घटनाओ मे होता है और इस कारण

इनमें चरित्र अधिक पूर्ण रूप में सामने आते हैं। परन्तु घटनाओं के विस्तार में अनेक बार ये चरित्र अधिक संघटित तथा एकरूप नहीं जान पड़ते। उनका चरित्र घटनाओं के घटाटोप में खो जाता है। इसी तरह महाकाव्यों में चरित्रों की कल्पना पूर्ण एकाई के रूप में प्रतिपादित नहीं होती। उनमें चरित्र प्रायः वर्ग (type) के रूप में आते हैं जैसा कि शास्त्रीय परिभाषाओं में निर्दिष्ट है, और इन चरित्रों की बँधी-बँधाई अभिव्यक्ति होती है। अधिकतर किसी चरित्र की एक विशेषता व्यक्त हो पाती है। इन महाकाव्यों में नायक-नायिका तथा प्रतिनायक से भिन्न सामान्य चरित्र की अवतारणा कम होती है, और होने पर भी उनको विशेष महत्त्व प्राप्त नहीं होता।

उपर्युक्त बातों को ध्यान में रखते हुए विचार करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि 'सेतुबन्ध' की स्थिति अन्य महाकाव्यों से कुछ भिन्न है। इस काव्य के नायक राम हैं जो अनेक काव्यों तथा नाटकों के नायक हैं। परन्तु यह कहना गलत न होगा कि प्रवरसेन के राम का अपना व्यक्तित्व है जो अन्य काव्यों से भिन्न है। प्रायः राम की कल्पना आदर्श धीरोदात्त नायक की की जाती है। इस दृष्टि से 'सेतुबन्ध' में राम की भिन्न स्थिति नहीं है। पर प्रवरसेन ने राम को अधिक स्वाभाविक रूप में प्रस्तुत किया है, इसमें सन्देह नहीं। वह वीर हैं, दुर्धर्ष वीर हैं। उनमें शत्रु को पराजित करने की अदम्य इच्छा है। परन्तु उनके चरित्र में कमज़ोरी के क्षण भी आते हैं। कोई कितना ही वीर क्यों न हो पर जहाँ वह अपने को निरुपाय पायेगा, वहाँ वह निराश होगा ही। 'सेतुबन्ध' में वीर राम ऐसे क्षणों में निराश चित्रित किये गये हैं। परन्तु कार्य की दिशा ज्ञात हो जाने पर, सिद्धि का उपाय स्पष्ट हो जाने पर वे क्षण भर का विलम्ब नहीं करते हैं। वर्षाकाल में निष्क्रियता की स्थिति है, और राम ने समय बहुत कठिनाई से व्यतीत किया :—

ववसाअरइपओसो रोसगइन्दद्दिढसङ्खलापडिबन्धो ।
कह कह वि दासरहिणो ——— गओ घणसमओ ॥१ १४



यहाँ कवि ने राम को अर्गलाबन्ध सिंह तथा पिंजर में पड़े हुए सिंह के समान कहकर राम के बाधित शौर्य को भली प्रकार व्यक्त किया है। परन्तु हनूमान के द्वारा सीता का समाचार प्राप्त कर लेने पर राम की भ्रुकुटि चढ़ जाती है और उन्होंने वीर भाव से अपने धनुष को इस प्रकार देखा कि मानो वह प्रत्यंचावाला हो गया (१ : ४५)। अर्थात् राम के सम्मुख रावण को पराजित करने का एक मात्र उद्देश्य स्थिर हो गया। कवि ने राम की दृष्टि संचालन मात्र से युद्ध-यात्रा की आज्ञा प्रचारित करायी है जिससे राम का दृढ़ संकल्प स्पष्टतः परिलक्षित होता है :—

सोह व्व लक्खणमुहं वणमाल व्व विअडं हरिवइस्स उरम्।
कित्ति व्व पवणतणअं आण व्व बलाइँ से विलग्गइ दिट्ठी ॥
१:४८॥

'आदि रामायण' में राम समाचार पाकर सागर पार उतरने के संबंध में सोच विचार करते हैं। यह राम की दूरदर्शिता कही जा सकती है, पर प्रवरसेन के राम में वीरोचित उत्साह विशेष परिलक्षित हुआ है। सागर के सम्मुख राम किंकर्त्तव्यविमूढ़ अवश्य जान पड़ते हैं, पर अधिकतर यही लगता है कि वे गम्भीर भाव से इस समस्या पर विचार कर रहे हैं। जाम्बवान द्वारा सम्बोधित किये जाने पर भी राम कार्य की धुरी सुग्रीव पर अवलम्बित करते हैं (४ : ४४)। परन्तु इसका भाव यह नहीं है कि राम में आत्मविश्वास की कमी है। वस्तुतः सैन्य के प्रधान सेनापति सुग्रीव है, अतएव सागर संतरण का कोई भी उपाय सुग्रीव द्वारा ही कार्यान्वित किया जा सकता है। अन्यथा राम ने स्वयं सागर से प्रार्थना का भार लिया, और सागर के न मानने पर बाण द्वारा उसको शासित भी किया। और इस बात की घोषणा राम ने प्रारम्भ में ही कर दी है :—

अह णिवकारणगहिअं मए वि अब्भत्थिओ ण मोच्छिहि धीरम्।
ता पेच्छह थोलीणं विहुओअहिजन्तणं थलेण वइवलम् ॥ ४:४६ ॥

राम वीर होने के साथ ही नीति कुशल हैं। विभीषण का स्वागत उन्होंने

जिन शब्दों में किया है और उसको आश्वासन दिया है, वह इस बात का साक्षी है। राम सीता को पूर्णतः प्रेम करते हैं। सीता वियोग में वे पीड़ित और दुःखित भी हैं। परन्तु प्रवरसेन ने राम के चरित्र में वियोग जन्य कातरता का निर्वाह उनकी वीरता के साथ बहुत कौशल के साथ किया है। राम एकान्त तथा निष्क्रियता के क्षणों में ही कातर तथा दुःखी होते हैं। वह चाहे शरद-ऋतु का सुन्दर वातावरण हो अथवा प्रायोपवेशन के समय चन्द्र-दर्शन हो, राम सीता के वियोग का अनुभव करते हैं, परन्तु कार्य करने के अवसर पर तुरंत क्रियाशील हो जाते हैं। रात में उनके लिए सीता वियोग को झेलना कठिन हो जाता है, परन्तु दिन युद्ध की कल्पना (उद्यम) में बीत जाता है। राम सीता के बिना अपना जीवन-शून्य मानते हैं —

काहिइ पिअ समुद्दो मलिहिइ चन्दाअवो समप्पिहिइ णिसा।
अवि णाम वरेज्ज पिआ अ णे विरहेज्ज जीवि अं तीविसण्णां॥
५:४॥

परन्तु राम को अपनी शक्ति पर पूरा विश्वास है, 'आज्ञा मानकर समुद्र मेरा प्रिय करेगा ही' से यही भाव व्यंजित होता है। नाग-पाश में बँधे हुए राम अवश्य निराशा की भावना से निर्बल जान पड़ते हैं। परन्तु इस प्रकार की निष्क्रियता की परिस्थिति में प्रवरसेन के राम की उद्विग्न हो उठने की प्रवृत्ति है। साथ ही इस प्रकार के प्रयोगों से चरित्र में सहज व्यक्तित्व की स्थापना की जा सकी है। ऐसी ही बातों से इस महाकाव्य में राम का चरित्र अधिक मानवीय बन पड़ा है।

राम के चरित्र में क्षमाशीलता तथा अपने प्रियजनों की प्रति कृतज्ञता की भावना विशेष रूप में पाई जाती है। राम अपने शत्रु पर भी उसी सीमा तक क्रुद्ध रहते हैं जब तक वह हठ करता है, एक बार प्रसन्न हो जाने पर राम समुद्र के अपराधों को भूल जाते हैं। इसी प्रकार नाग-पाश में बद्ध होने की स्थिति में राम अपनी विवशता के साथ लक्ष्मण के मरण के विश्वास के कारण अत्यंत मानसिक क्लेश में पड़ जाते हैं।

इस स्थिति में वे सीता को भी भूल गये, पर लक्ष्मण के स्नेह, सुग्रीव की मित्रता तथा विभीषण को दिये हुए वचन को नहीं भूलते हैं (१४: ४६-४७)। रावण की मृत्यु के बाद राम उसकी अन्त्येष्ठि क्रिया की व्यवस्था करवा देते हैं। यह उनके चरित्र की महानता ही है।

'सेतुबन्ध' मे सीता नायिका हैं। वस्तुतः सेतु-रचना तथा रावण वध की प्रमुख घटनाओं का केन्द्र सीता ही है। इस महाकाव्य में सीता का चरित्र अनेक बार सामने नहीं आया है। वस्तुतः राम के माया-शीश के प्रसंग में ही सीता प्रत्यक्ष रूप में सामने आती हैं। पर सीता की भावना सारे महाकाव्य मे परिव्याप्त है, क्योंकि इस काव्य की समस्त कार्य-योजना में वे प्रमुख प्रेरणा के रूप मे विद्यमान हैं। रावण के अशोक-वन में बन्दिनी सीता की विरह-वेदना तथा उनके मलिन स्वरूप की कल्पना प्रवरसेन ने प्रथम सर्ग मे हमारे सामने साकार कर दी है। हनूमान द्वारा स्मृति-चिह्न के रूप मे लाई गई मणि के वर्णन में कवि ने सीता के विरहिणी रूप को प्रत्यक्ष कर दिया है :—

चिन्ताइअप्पइ मिव तं च करे खेअणीसहं व णिसण्णम ।
वेणीबन्धणमइल सोआकिलन्त व से पणामेइ मणिम् ॥१:३६॥

सीता के क्लेश की भावना ने राम को युद्ध के लिए निरन्तर प्रेरित किया है। सीता के प्रति रावण के अन्याय का प्रतिशोध लेने के लिए राम स्वयं ही रावण से युद्ध करना चाहते हैं और उसका वध भी स्वयं ही करना चाहते है। इसके बिना राम को सन्तोष नहीं, वे सीता के अपमान का प्रतिकार इसी मे मानते हैं :—

दसकण्ठं मुहवडिअं केसरिणा वणगअं व मा हरह महम् ॥१५:६१॥

राम के इस संकल्प में सीता के चरित्र की दृढ़ता भी परिलक्षित होती है। सीता राम के प्रति अपने प्रेम मे दृढ़ है। स्वयं रावण स्वीकार करता है :—

कह विरहप्पडिऊला होहिइ समुहहिआ पइम्मि उवगए ॥ ११:२६ ॥

'कल्पित वैसे भी कल्पना को नहीं चाहती, फिर मुझे को देख कर कैसे चाहेगी ?' रावण ने सीता को वश में करने के लिए सभी उपायों का आश्रय लिया होगा, पर अन्त में वह समझ जाता है कि सीता त्रिभुवन के वैभव से भी लुभाई नहीं जा सकती है और उनको शरीर नाश की चिन्ता भी भयभीत नहीं कर सकती। रावण के इस निश्चय में से सीता का चरित्र अधिक उभर कर सामने आता है। राम के मायाशीश के प्रसंग में कवि ने प्रारम्भ में सीता का अत्यन्त करुण चित्र अंकित किया है। अशोक-वन में सीता किस त्रास, आतंक तथा क्लेश में अपने दिन बिता रही हैं, इसका आभास इस चित्र से मिल जाता है। उनका वेणी-बन्ध पीठ के पीछे बिखरा हुआ है, उनका वक्ष अश्रुप्रवाह से प्रक्षालित हो गया है, गाल रूखे हैं, मुखमण्डल आगे को झुके अलकों से ढका हुआ है। और सीता की सूनी दृष्टि में उनका विरह, उनका दैन्य तथा उनकी प्रतीक्षा न जाने कितने करुण भाव अभिव्यक्त होते हैं :

थोअमउआअअहिअपिअअणगअणिअअणुग्गाअणअलआअणामं ।
करअलसह्मिअअवाणुत्ताणिअपव्हालमाणपण्हअं ॥ ११:४९ ॥

वानर सैन्य के कोलाहल को सुन कर अपने प्रिय के सामीप्य का अनुभव करती हुई सीता का हर्षातिरेक में अश्रुप्रवाह करना स्वाभाविक है।

कवि प्रवरसेन ने सीता का चित्रण साधारण नारी के स्तर पर ही किया है। युद्ध के सम्बन्ध में उनकी चिन्ता से यह स्पष्ट है। राम के पराक्रम पर उनको विश्वास है और इस भाव से उनके मन का संताप शान्त हो गया है, पर रावण की कल्पना से वे चिन्तित और व्याकुल भी कम नहीं हैं। इसी मानसिक पृष्ठभूमि के कारण जब रावण की आज्ञा से राक्षस राम का मायाशीश सीता के सम्मुख लाये, उसको देखते ही वे म्लानमुख हो गईं, समीप लाये जाने पर कांपने लगीं और यह कहे जाने पर कि यह राम का शीश है, वे मूर्च्छित हो गईं (११:५३)। इस बात पर इतनी आसानी से विश्वास कर लेने के कारण सीता के चरित्र को कमजोर कहा जा सकता

है। परन्तु मानवीय हृदय के लिए यह बहुत स्वाभाविक परिस्थिति है। सीता जिस मानसिक उत्पीडन तथा वेदना की स्थिति मे थी, उसमे इस प्रकार की माया का प्रभाव ऐसा ही पडना संभव था। सीता का राम की अपराजेय शक्ति के प्रति सन्देहशील हो उठना, इस मानसिक स्थिति मे उचित है। इसको मूल चरित्र की निर्बलता नहीं कहा जा सकता, वरन् परिस्थिति की विशिष्टता ही मानना चाहिए। अपने प्रिय के कटे हुए सिर की कल्पना मात्र से कोई भी स्त्री इतनी अभिभूत हो उठेगी कि उसमें अधिक तर्क करने की शक्ति नही रह जायगी। यही कारण है कि त्रिजटा के समझाने से भी सीता के मन का आवेग कम नहीं होता। सीता के विलाप मे अनन्त करुणा है। उनको पश्चात्ताप है कि इस स्थिति मे प्रिय को देख कर भी वह प्राण धारण किये हुए है। वियोग के बाद ही यदि जीवन का अन्त हो जाता तो प्रिय का मिलन हो ही जाता। यह भावना उनके मन को मथ रही है। सीता प्राण धारण किये रहने की अपनी कठोरता को स्त्री स्वभाव का त्याग मानती हैं। अपनी प्रस्तुत स्थिति के कारण रूप रावण के प्रति उनके मन मे अत्यन्त घृणा है। सीता के मन की प्रतिशोध की भावना इस अवसर पर भी वर्तमान है। राम के मरने के बाद सीता के मरण का मार्ग प्रशस्त हो गया है, पर इस स्थिति मे भी सीता को रावण-वध न हो सकने का दुःख हो रहा है। प्रतिशोध पूरा न हो सकने का क्लेश भी सीता को कम नहीं है :—

तुह वाणुक्खअणिहअं दच्छिम्मि दहकण्ठमुहणिहाअं ति कआ।
मह भाअधेअचलिआ विवराहुत्ता मणोरहा पल्हत्था ॥११ : ८५॥

त्रिजटा कई तर्कों से सीता को समझाने का प्रयत्न करती है कि यह राम का सिर माया द्वारा निर्मित है। पर सीता का विलाप कम नही होता, उनकी व्यथा दूर नहीं होती। वे मरण के लिए कृतसंकल्प होती हैं। त्रिजटा ने गम्भीर शब्दो मे पुनः सीता को समझाने का प्रयत्न किया। इतने विश्वास भरे वचनों का भी सीता पर प्रभाव नहीं पड़ा और उन्होने उसकी बात पर तभी विश्वास किया कि जब वानरो का कलकल और

राम का प्राभातिक मंगल-पटह सुना। इस अवसर पर सीता के चरित्र को आवश्यकता से कुछ अधिक भावावेश में चित्रित किया गया है जिससे वह निर्बल जान पड़ता है।

राम के साथ उनके प्रतिनायक रावण का चरित्र राम-कथा की विस्तृत परम्परा का प्रधान चरित्र है जिसका मूल 'आदि रामायण' ही माना जाता है। व्यापक रूप में समान होते हुए-भी 'सेतुबन्ध' का रावण 'आदि रामायण' के रावण से भिन्न है। वाल्मीकि ने रावण की उग्र-वीरता, मायावी राक्षसत्व आदि पर अधिक बल दिया है। उनने सीता का अपहरण विशेष परिस्थिति में किया है। सीता को वह अपनाना भी चाहता है। परन्तु 'सेतुबन्ध' के रावण में सीता के प्रति अत्यन्त उग्र आकर्षण है। कथा में ऐसा जान पड़ने लगता है, जैसे रावण के सीता अपहरण का एक मात्र उद्देश्य सीता के प्रति उसका आकर्षण है। वह कामुक प्रेमी के रूप में अधिक उपस्थित किया गया है। ग्यारहवें आश्वास के प्रारम्भ में सीता-विषयक उसकी काम व्यथा का सूक्ष्म चित्रण किया गया है। सीता के सम्बन्ध में उसकी यह वेदना तीखी और गहरी है। जैसे उसको बिना सीता को प्राप्त किये किसी प्रकार चैन नहीं है। सीता के प्रति उत्कट प्रेम होने के कारण ही रावण राम को सम्मान की भावना से देखता है :—

सीआहिअहि अएण अ अह सो त्ति दसाणणेण साहिसिट्ठो।
ण वि तह रामो त्ति चिरं अह तीअ पिओ त्ति सुबहुमाणं दिट्ठो॥
१५:६॥

परन्तु प्रवरसेन ने रावण को अपेक्षाकृत निर्बल चरित्र और कायर दिखलाया है। वैसे राम के समान रावण ने भी कभी सन्धि की बात नहीं सोची है और राम को पराजित करने का विश्वास उसके मन में अन्त तक बना रहा है। कई स्थलों पर ऐसा जान पड़ता है रावण राम से भयभीत है और लंका में उनके प्रवेश पर काँप उठा है। दशवें आश्वास में कहा गया है कि राम के आगमन का समाचार सुन कर

क्रुद्ध हो उठा रावण धैर्यहीन होकर आक्रान्त शिखरो वाले सुवेल के साथ ही काँप उठा। परन्तु यहाँ रावण का काँपना शत्रु के प्रति क्रोध की भावना तथा उसके आतंक दोनों की मिश्रित भावना से उत्पन्न है। साथ ही शत्रु का सागर पर सेतु बाँध लेने का समाचार निश्चय ही रावण जैसे वीर के लिये भी आतंक का विषय हो सकता है। इसी प्रकार ग्यारहवें आश्वास में त्रिजटा सीता से कहती है :—

मोत्तूण अ रहुणाहं लज्जागअसेअविन्दुइज्जन्तमुहो।
केण व अण्णेण कअ पाआरन्तरिअणिप्पहो दहवअणो॥
११:१२५॥

परन्तु इस स्थिति में त्रिजटा के वचनों के आधार पर रावण के चरित्र की विवेचना नहीं की जा सकती है। वह सीता को समझाने के उद्देश्य से कह रही है और रावण के लज्जाजनक कार्य से वह असन्तुष्ट भी है।

लेकिन प्रवरसेन के रावण के चरित्र में कायरता का अंश जड़मूल है, इसमे सन्देह नहीं। पन्द्रहवें आश्वास मे अपने वंशजो तथा परिजनों की मृत्यु से दुखित और क्रुद्ध होकर रावण युद्ध-भूमि के लिए प्रस्थान करता है। युद्ध मे जाने के लिए ऐसा जान पड़ता है वह टालता है। इस बार युद्ध में राम के बाणों से भयभीत होकर वह लका भाग आता है। भागते समय वानरो की हँसी को वह चुपचाप सह लेता है :—

अह रामसराहिअओ पवएहि परंमुहोहसिज्जन्तरहो।
छिण्णपडिआअवत्तो लङ्काहिमुहो गओ णिसाअरणाहो॥१५:१०॥

परन्तु जब वह युद्ध मे प्रवृत्त होता है तब राम का समर्थ प्रतिद्वन्द्वी सिद्ध होता है। उसके बाणो से त्रिभुवन के साथ राम कम्पित हो गये। कवि ने राम-रावण के युद्ध का संक्षिप्त वर्णन किया है, पर यह प्रदर्शित किया है कि वे समान योद्धा हैं। राम रावण के साथ युद्ध करने में गौरव का अनुभव करते है, क्योंकि उन्होंने लक्ष्मण को रावण से युद्ध करने की आज्ञा नहीं दी, वे स्वयं रावण से युद्ध करना चाहते हैं। प्रवर-सेन ने युद्ध करते हुए रावण की वीरता को स्वीकार किया है :—

भिण्णो णिडालवट्टो ण अ से फुडभिउडिविरअणा विर्दाविआ ॥
१५.७१॥

मस्तक कट जाने पर भी रावण की भ्रुकुटियाँ तनी की तनी रहती है। वह राम पर बाणों की भीषण वर्षा करता है और राम के बाणों का तीखा उत्तर भी देता है।

रावण के चरित्र में उदारता भी है, और यह गुण 'आदि रामायण' में भी विद्यमान है। रावण सीता का अपहरण करने के बाद भी उन पर बल प्रयोग नहीं करता। वह सीता को प्रसन्न किये बिना अपनाना नहीं चाहता। यह बात दूसरी है कि सीता से अपनी बात स्वीकार करवाने के लिए उसने अनेक मायावी उपायों का आश्रय लिया। उसके हृदय में कोमलता भी है। वह अपने परिवार और परिजनों से स्नेह करता है। वह अपने सेनापतियों की मृत्यु पर दुःखी तथा क्रुद्ध होता है। इन्द्रजीत तथा कुम्भकर्ण की मृत्यु पर वह रोया है और विलाप करता है। यद्यपि विभीषण ने उसके साथ विश्वासघात किया है, पर वह उस पर दया ही करता है। सामने आ जाने पर भी रावण अपने इस भाई पर घातक प्रहार नहीं करता :—

पासावडिअम्मि वि से विहीसणे पवअसेण्णकअपरिवारे।
दीणो त्ति सोअरो त्ति अ अमरिसरससन्धिओ वि उच्छलइ सरो ॥१५:४५॥

'सेतुबन्ध' की एक विशेषता यह भी है कि इस महाकाव्य में प्रमुख चरित्रों के अतिरिक्त अन्य चरित्रों को भी समान महत्त्व मिल सका है। वस्तुतः प्रवरसेन ने अपने काव्य में कथा-वस्तु के विकास को दृष्टि में रखा है। इसी कारण कथात्मक योजना में आनेवाले सभी पात्रों का चरित्र अपने-अपने स्थान पर सजीव रूप में प्रस्तुत किया गया है। लक्ष्मण सुग्रीव, हनूमान, जाम्बवान, विभीषण आदि ऐसे चरित्र हैं जिनको कवि अपने महाकाव्य में व्यक्तित्व प्रदान कर सका है। यही नहीं नल जैसे 'रामायण' के अप्रमुख चरित्रों को कवि ने किञ्चित स्पर्श मात्र से स्पन्दित कर दिया है। लक्ष्मण राम कथा के अपरिहार्य चरित्र हैं। राम जैसे लक्ष्मण

के बिना अधूरे रह जाते हैं। इस महाकाव्य मे लक्ष्मण का चरित्र इस दृष्टि मे विशेष महत्त्व नहीं प्राप्त कर सका है, पर वह राम की छाया के समान उनके साथ हैं। सर्वप्रथम पहले लक्ष्मण का उल्लेख कवि उस स्थल पर करता है जब उसने राम की लंकाभियान की भावना से प्रेरित दृष्टि का वर्णन किया है। 'राम की दृष्टि वानरराज सुग्रीव के कठोर वक्षस्थल पर वनमाला की तरह, पवनसुत हनूमान पर कीर्ति के समान, वानर सेना पर आशा की भाँति तथा लक्ष्मण के मुख पर शोभा की तरह पड़ी' (१:४८)। वस्तुतः यहाँ इस प्रकार लक्ष्मण के वीर स्वभाव को अभिव्यक्त किया गया है। कथा के विस्तार मे लक्ष्मण अधिकतर मौन हैं और यह कुछ खटकता है। सागर दर्शन करके लक्ष्मण बिल्कुल विचलित नहीं होते। आगे चलकर युद्ध मे राम के साथ लक्ष्मण भी नागपाश मे मेघनाद द्वारा बाँध दिये जाते हैं। नागपाश में बँधने के समय राम-लक्ष्मण के बाधित शौर्य का वर्णन साथ ही किया गया है :—

ताण सुअङ्गपरिगआ दुक्खपहुव्वन्तविअडभोगावेढा ।
जाआ थिरणिक्कम्पा मलअअडुप्पण्णचन्दणदुम व्व भुआ ॥१४:२५॥

राम मूर्च्छा से जागने के बाद लक्ष्मण को संज्ञाहीन देख कर जिस प्रकार विह्वल हो उठते हैं उससे भाई के प्रति उनके प्रेम का परिचय मिलता है। राम ने लक्ष्मण के सम्बन्ध मे उस अवसर पर जो कुछ कहा है उससे भी उनके अप्रतिम शौर्य का परिचय मिलता है—'जिसके धनुष की प्रत्यंचा के चढ़ने पर त्रिभुवन संशय में पड जाता था' (१४:४३)। लक्ष्मण द्वारा मेघनाद-वध के प्रसंग का कवि ने सूचना के रूप मे उल्लेख भर कर दिया है। अन्त में लक्ष्मण राम से रावण-वध के लिये आज्ञा प्राप्त करने की प्रार्थना करते हुए उपस्थित किये गये हैं। लक्ष्मण राम से कहते हैं कि 'आप किसी महान शत्रु पर क्रोध करें, तुच्छ रावण पर क्रोध न करें' (१५:५४)। सम्पूर्ण महाकाव्य में लक्ष्मण के उत्साह का एक यही क्षण कवि ने उपस्थित किया है।

'सेतुबन्ध' में सुग्रीव का चरित्र महत्त्वपूर्ण है। कवि ने सुग्रीव को

सम्पूर्ण वानर सेना का सेनापति मान कर उनका चरित्र प्रस्तुत किया है। सुग्रीव कपिराज भी है, परन्तु यहाँ उनका महत्व सेनानी के रूप में अधिक है। सुग्रीव को राम ने बालि वध के बाद किष्किन्धा का राजा बनाया है। और सुग्रीव राम के उपकार को कभी नहीं भूलते, वह उनसे उऋण होने के लिए सदा चिन्तित है। हनूमान द्वारा सीता का समाचार मिल जाने पर राम लंकाभियान की इच्छा से धनुष को देखते हैं, उस समय सुग्रीव का हृदय बदला चुका सकने की भावना से उच्छ्वसित हो उठता है (१:४६)। इसी प्रकार रावणवध के बाद सुग्रीव अपने प्रत्युपकार को सम्पन्न हुआ जान सन्तुष्ट होते हैं :—

सिहइअम्मि अ दहवअणे आसंघन्तेण पाअअणाआलम्बम् ।
सुग्गीवेण वि दिट्ठो पच्चुवआरस्स साअरस्स व अन्तो ॥१५:९.२॥

सुग्रीव वानर सैन्य के प्रधान सेनापति हैं। सेना संचालन की प्रत्येक आज्ञा राम सुग्रीव द्वारा ही प्रचारित कराते हैं। वह बहुत सफल सेनापति के रूप में उपस्थित किये गये हैं। सुग्रीव में ओजस्वी भाषण देने की अपूर्व क्षमता है। उनमें अपने बल पराक्रम को बहुत बढ़ा-चढ़ा कर कहने की प्रवृत्ति भी है, पर सेना को निराशा के क्षणों में उत्साहित करने के लिये यह बहुत उपयोगी सिद्ध हुई है। सागर के विराट विस्तार को देख कर वानर-सेना निराश तथा हतोत्साह हो जाती है। इस अवसर पर वानरराज ने बहुत महत्त्वपूर्ण भाषण दिया है। वानर सेना के सम्मुख अनेक पक्ष रखकर सुग्रीव ने यह प्रभाव डालना चाहा कि सागर संतरण तथा युद्ध के अतिरिक्त उनके सामने दूसरा मार्ग नहीं है। फिर अपने पराक्रम के वर्णन द्वारा वह अपनी सेना में आत्मविश्वास का संचार करते हैं। परन्तु सुग्रीव के स्वभाव में अहम्मन्यता तथा जल्दबाजी भी है। वह उत्साह में बात को बढ़ाकर कहते हैं, यह प्रवृत्ति उनके स्वभाव में सर्वत्र परिलक्षित होती है। राम-लक्ष्मण के नागपाश में बँध जाने के अवसर पर सुग्रीव अपने उत्साह को इन्हीं शब्दों में व्यक्त करते हैं :—

इअ अज्जं चेअ मए णिहअम्मि दसाणणे णिआ किक्किन्धम्।
अणुमरिहिइ व भरन्तं दच्छिहि व जिअन्तराहवं जणअसुआ ॥
१४:५५॥

परन्तु प्रवरसेन ने इस प्रकार के भाषणों के बहुत उपयुक्त अवसर चुने हैं। सेना मे जब निराशा और हतोत्साह फैला हो उस समय सेनापति के इस प्रकार के वचनों का बहुत प्रभाव पड़ सकता है।

इस महाकाव्य में हनूमान का चरित्र अत्यन्त गंभीर, संयत और वीर चित्रित किया गया है। कथावस्तु में हनूमान के आगमन से गति आती है। इस पात्र के प्रति वानर सेना का आदर भाव होना स्वाभाविक है। हनूमान ने अकेले सागर पार जाकर सीता का समाचार प्राप्त किया है। वानर सेना ने जब सागर को सामने फैला हुआ देखा तब उनका यह भाव अधिक स्पष्ट होकर व्यक्त हुआ है :—

पेच्छन्ताण समुद्दं चडुलो वि अउव्वविम्हअरसत्थिमिओ।
हणुमन्तम्मि णिवडिओ सगोरवं वाणराण लोअणणिवहो ॥२:४३॥

इसी प्रकार जाम्बवान् का चरित्र एक अनुभवी गंभीर व्यक्ति का है। सुग्रीव को जिन शब्दो मे उन्होंने समझाया, उनसे स्पष्ट हो जाता है कि उनमें अनुभव की गहराई के साथ सन्तुलन की शक्ति भी है। उन्होने सुग्रीव को अत्यंत उत्साह से रोका है। इसी प्रकार वह राम को उनकी शक्ति का स्मरण दिलाते है। उनकी वाणी मे शालीनता और मर्यादा का गौरव ध्वनित होता है। नल के चरित्र मे भी उचित मर्यादा है। जब तक उससे सेतु-निर्माण के लिए कहा नहीं जाता, वह अपनी शक्ति और कौशल के विषय में कुछ कहने मे संकोच करता है। परन्तु आज्ञा पाकर वह अपनी शक्ति का उद्घोष आत्मविश्वास भरे शब्दों मे करता है :—

त पेक्खसु महिविअल महिवट्टम्मि व महं महोअहिवट्ठे।
घडिअं घडन्तमहिहरवडिअसुवेलमलन्तरं सेउवहम् ॥८:२१॥

'सेतुबन्ध' मे विभीषण का चरित्र उज्ज्वल नहीं है। वह रावण के

पास से शत्रुपक्ष में चला आता है। यह ठीक है कि वह भक्त है और अन्याय के विरुद्ध में है, परन्तु उसके मन में राज्याभिलाषा अधिक बलवती है। राम ने उसको इस उत्कण्ठा के साथ राम ने ही अपना लिया है। यही कारण है कि रावण की मृत्यु पर उसका रुदन और शोक कृत्रिम जान पड़ता है। राम के सम्मुख हनुमान ने विभीषण को प्रस्तुत किया, और राम ने विभीषण को सात्विक प्रकृति का कहा और प्रशंसा की। पर हम यह नहीं भूल सकते कि सिर पर अभिषेक के जल के साथ विभीषण के नेत्रों में आनन्दोल्लास भी छा गया (८:६४)। आगे इस बात को समझना भी सरल हो जाता है। अत्यन्त पीड़ा और निराशा की स्थिति में भी राम को विभीषण के सम्बन्ध में यही दुःख है कि रावण की राजलक्ष्मी उसको नहीं मिल सकी :—

आबद्धबन्धुवेरं ण मे सा णिव्वा विभीसणं रायसिरी ।
दुक्खेण एण अ महं आवडिअअणाणं अगरस्स हिअअम ॥१४:४७॥

इस प्रकार विभीषण के चरित्र की प्रमुख विशेषता यही लगती है कि उसने राज्य प्राप्त करने के लिए ही राक्षस-कुल के प्रति विश्वासघात किया। उसने अनेक रहस्यों का उद्घाटन करके राम की सहायता की है। यद्यपि विभीषण रावण-वध पर विलाप करते हुए कहता है कि तुम्हारा पक्ष न ग्रहण करने वाला मैं यदि धार्मिक गिना जाऊँगा तो अधार्मिक कौन गिना जायगा, पर यह अपने आप पर किया गया व्यंग जान पड़ता है।

'सेतुबन्ध' में प्रत्येक पात्र सजीव हैं। उनका अपना व्यक्तित्व है। राम-कथा के प्रसिद्ध और प्रचलित पात्र होकर भी वे सभी प्रवरसेन की उद्भावना के पात्र एक सीमा तक जान पड़ते हैं। जिस प्रकार कवि ने कथात्मक घटनाओं की योजना में सफलता प्राप्त की है उसी प्रकार चरित्रों के निर्माण में भी।

कथोपकथन

महाकाव्यों में कथोपकथन का महत्त्व नाटक के समान नहीं होता है, फिर भी कवियों ने इसका सुन्दर प्रयोग

तथा भाषणशैली किया है। महाकाव्यों के चित्रांकन तथा वर्णना के अन्तर्गत कथोपकथन का प्रयोग आकर्षक बन जाता है। साथ ही पात्रों के चारित्रिक विकास की दृष्टि से इसका प्रयोग आवश्यक हो जाता है। अन्य प्रयोगों के समान महाकाव्यों के विकास काल मे कथोपकथन का प्रयोग अधिक स्वाभाविक तथा सहज रूप मे हुआ है, परन्तु बाद के परम्परावादी महाकाव्यों मे इसका प्रयोग रूढ़िग्रस्त होता गया है। चारित्रिक विकास के स्थान मे इसका उद्देश्य चमत्कृत उक्तियाँ रह गया है। कालिदास के महाकाव्यो मे वार्तालाप का स्तर स्वाभाविक तथा मनोवैज्ञानिक है। कालिदास स्वयं उच्चकोटि के नाटककार है, यही कारण है कि कथोपकथन का सुन्दर प्रयोग वे अपने महाकाव्यों मे भी कर सके है। कालिदास अपनी अन्तर्दृष्टि से मानवीय जीवन की सूक्ष्म परिस्थितियो को समझ सकने मे समर्थ हुए हैं और वार्तालाप में उनको सजीव भी कर सके है। 'सेतुबन्ध' महाकाव्य कथोपकथन तथा भाषण शैलियो की दृष्टि से कालिदास के अधिक निकट है। प्रवरसेन ने भी जीवन के अधिक सहज स्तर पर कथोपकथनों को प्रस्तुत किया है। अपनी गहन चित्रांकन शैली के बीच मे कवि ने वार्तालाप तथा भाषणों को स्वाभाविक रूप से प्रस्तुत कर दिया है, जिससे कथावस्तु में एकरसता नहीं आने पाई है और चरित्रों के निर्माण में पूरी सहायता मिली है।

प्रवरसेन भावात्मक परिस्थितियो के सफल कलाकार हैं, यह बात उनके कथोपकथनो से भी सिद्ध हो जाती है। कवि ने हनूमान के आने की परिस्थिति को लिया है, हनूमान राम से सीता का समाचार कह रहे है, पर राम पर प्रत्येक बात का भिन्न प्रभाव पड़ता है, हनूमान ने कहा—'मैंने देखा है', इस पर राम को विश्वास नहीं हुआ। हनूमान ने फिर बतलाया—'सीता क्षीण शरीर हो गई है', यह जान कर राम ने अश्रु से आकुलित होकर गहरी साँस ली। और जब हनूमान ने समाचार दिया—'सीता तुम्हारी चिन्ता करती है', प्रभु रोने लगे। तथा हनूमान ने

सूचना दी—'सीता सकुशल जीवित हैं'. यह सुन कर राम ने हनुमान का गाढ़ालिंगन किया (१ : ३८)। यहाँ हनुमान के प्रत्येक वाक्य का राम पर भिन्न-भिन्न प्रकार का प्रभाव अभिव्यंजित किया गया है। इस संक्षिप्त वार्तालाप में कवि ने भावात्मक परिस्थिति का प्रत्यक्ष कर दिया है। कार्य को गति देने की दृष्टि से कवि ने इस अवसर पर अधिक कथोपकथन का आश्रय नहीं लिया है।

सागर-तट पर एक विशेष परिस्थिति उत्पन्न होती है। सागर के विराट रूप को देख कर सारा कपि-सैन्य हतोत्साह होकर स्तब्ध रह जाता है। ऐसे अवसर पर सेना के प्रधान नायक सुग्रीव पर गम्भीर उत्तरदायित्व आ पड़ता है। सारी सेना को उत्साहित करके कार्य में नियोजित करना है। सुग्रीव ने इसी प्रयोजन से तीसरे आश्वास में लम्बा भाषण दिया है। वस्तुतः यह भाषण बहुत ही सफल है, इसकी तर्कशैली तथा ओजस्विता में बहुत अधिक आग्रह और प्रभाव है। सुग्रीव वानर वीरों के शौर्य की प्रशंसा करके उनमें आत्मविश्वास जगाना चाहते हैं, राम की शक्ति का स्मरण दिला कर उनके मन में भय और सन्देह दूर करना चाहते हैं, हनुमान के बल पराक्रम का उल्लेख कर उनको वर्तमान मनःस्थिति के प्रति लज्जित करके उत्साहित करने का प्रयत्न करते हैं, कार्य सम्पादन में प्राप्त होने वाले यश का उल्लेख करके उनको आकर्षित करना चाहते हैं तथा वापस लौट जाने की लज्जा की भावना उनके मन में जगाने का उपक्रम करते हैं। इस प्रकार वानर सैनिकों के मनोभावों को पूर्णतः आक्रान्त करके सुग्रीव उनको कार्य में लगाना चाहते हैं, और यही श्रेष्ठ सफलता की मूल प्रेरणा होती है। सुग्रीव कहते हैं—'इस दुःसाध्य और गुरु कार्य को राम ने पहले हृदय रूपी तुला पर तौला और फिर तुम वानर वीरों पर छोड़ा है।' इस प्रकार एक ओर सुग्रीव राम के सामर्थ्य को प्रकट करते हैं और दूसरी ओर—'हे वानर वीरो, प्रस्तुत कार्यभार तुम्हारा ही है' कह कर उनकी वीरता की प्रशंसा भी करते हैं। वे वानर-वीरों को इस बात का स्मरण भी दिलाते हैं कि राम तुम्हारा उपकार

करनेवाले हैं। वीर पुरुषों के चरित्र की व्याख्या करते हुए सुग्रीव सैनिकों को जैसे चुनौती देते हैं :—

सीहा सहन्ति बन्धं उक्खअदाढा चिरं धरेन्ति विसहरा।
ण उण जिअन्ति पडिहआ अक्खण्डिअववसिआ खणं पि समत्था॥
३ : २२॥

सुग्रीव ने वानर वीरों से घर वापस लौट जाने की लज्जा को विशेष व्यंजना के साथ कहा है—'बिना कार्य सम्पादित किये वापस लौटे आप लोग दर्पण के समान निर्मल, अपनी पत्नियों के मुख पर प्रतिबिम्बत विषाद को किस प्रकार सहन करेंगे?' इस तर्क में गहरी मार्मिकता है, भागे हुए योद्धा की पत्नी उसका स्वागत नहीं कर सकेगी और इस प्रकार की प्राणरक्षा से क्या लाभ? फिर सुग्रीव सेना को यह भी विश्वास दिलाते हैं कि सागर दुस्तर नहीं है, वरन् वीर के लिए लज्जा का लाँघना ही अधिक कठिन है। इस प्रकार अनेक तर्कों से वह वानर सेना के भय को दूर करना चाहता है और उसमें आत्मविश्वास जगाना चाहता है (३-५०)। परन्तु जब इस पर भी सेना का सम्मोह भंग नहीं हुआ, तब सुग्रीव ने गर्वोक्ति के साथ आत्म-शक्ति का कथन प्रारम्भ किया। यह अन्तिम उपाय है जिससे वह समस्त सेना में उत्साह भर सका है। प्रारम्भ वह भर्त्सना से करता है :—

इअ अत्थिरसामत्थे अण्णस्स वि परिअणम्मि को आसङ्गो।
तत्थ विणाम दहमुहो तस्स ठिओ एस पडिहडो मज्झ भुओ॥
३ : ५३॥

उसका भाव है कि तुम्हारे जैसे परिजनों का भरोसा करके कोई सेनापति विजय प्राप्त नहीं कर सकता। आगे वह वानर सेना की स्थिति पर तीखा व्यंग करता है—'जहाँ प्राण-संशय की स्थिति में भयवश लोग एक दूसरे से चिपके हुए हैं, कौन किसका सहायक हो सकता है?' फिर अपने ऊपर भरोसा करने की बात कहता है। अपने पराक्रम के कथन में अत्युक्तिपूर्ण गर्वोक्ति है, पर परिस्थिति को देखते हुए यह अस्वाभाविक

नहीं जान पड़ती—'हे वानर वीरो, [illegible] न हो! मेरे रोषयुक्त चरणों से आक्रान्त पृथ्वी तल विवर मात्र होगा, उसे समुद्र भर जायगा' (३:५३)। इस प्रकार की आत्मश्लाघा से वानर सैन्य को उत्साहित करके कार्य में नियोजित करने का प्रयत्न किया गया है।

सुग्रीव की ओजस्वी तथा कर्कश वाणी से निश्चय नया प्रोत्साहित वानर सैन्य में उत्साह और आत्मविश्वास का जागरण तो हुआ, पर सागर-संतरण का वह कोई उपाय न था। ऐसी स्थिति में जाम्बवान् गम्भीर तथा संयत वाणी से वास्तविक स्थिति पर विचार करते हैं और सुग्रीव को समझाते हैं। जाम्बवान् के कथन में विचारों की प्रौढ़ता और अनुभवजन्य गम्भीरता परिलक्षित होती है। पहले जाम्बवान अपने को वयोवृद्ध सिद्ध करते हैं, पर साथ ही उनमें अपनी बात को अधिक बल प्रदान करने वाली नम्रता भी है :—

धीरं हरइ विसाओ विणग्रं जोव्वणमग्रो अणङ्गो लज्जम् ।

एक्कन्तगहिअवक्खो किं सेसउ जं ठवेइ वअपरिणामो ॥४:२३॥

'एकपक्षी निर्णयबुद्धिवाले बुढ़ापे के धारण करने को बचा ही क्या है' इतना कह कर भी वह अपनी बात को आन्तरिक विश्वास के साथ स्थापित भी करते हैं—'जरावस्था के कारण परिपक्व तथा अनुभूत ज्ञान वाले मेरे वचनों का अनादर न कीजिए, मेरे वचन अपसिद्धान्त की व्याख्या करके भी व्यवस्थित अर्थ वाले हैं' (४:२४)। इस प्रकार अपने कथन की सार्थकता की स्थापना करने के बाद जाम्बवान् ने सुग्रीव की गर्वोक्ति का प्रत्याख्यान किया और उसको कार्य-सिद्धि के लिये अनुपयुक्त सिद्ध किया। अत्यन्त सूक्ष्म ढंग से उन्होंने सतर्क किया है—'हे वानरपति, राम का प्रिय कार्य है, इस भाव से रावणवध की इच्छा करते हुए तुम उसके लिए स्वयं शीघ्रता करनेवाले रघुपति का कहीं अप्रिय तो नहीं करना चाहते' (४:३६)। सुग्रीव को इस प्रकार समझा कर जाम्बवान ने राम को कार्य के लिए मार्ग निकालने की प्रेरणा दी है। राम के उत्तर में उनके चरित्र के अनुकूल संयम है, वे कार्य की धुरी सुग्रीव पर ही अव-

लम्बित मानते हैं, पर साथ ही अश्वपति के वचनों का भी उचित समादर करते हैं।

राम-बाण से व्याकुल होकर सागर ने जो राम से कहा है उसमें संयम और तर्क का अद्भुत संयोग हुआ है। वह सबसे पहले राम के उपकार का स्मरण करता है, और कहता है कि 'तुमने गौरव प्रदान किया है, स्थिर धैर्य का संग्रह किया है, मैं तुम्हारी आज्ञा न मान कर तुम्हारा अप्रिय कैसे करूंगा' (६:१०)। फिर वह अपने प्रति किये गये अन्याय का स्मरण दिलाता है—'हे राम, सदा मुझे ही विमर्दित किया गया है। मधु दैत्य के नाश के लिए निरन्तर मन्थनशील गति से और पृथ्वी के उद्धार के समय दाढ़ों के आघात से मैं ही पीड़ित किया गया हूँ' (६:१३)। आगे वह यह भी कहता है कि धैर्य मेरा स्वभाव है और इस समय उसी से यह अप्रिय कार्य हुआ। यह कितना अच्छा तर्क है ! अपनी रक्षा के लिये वह और अधिक संगत तर्क देता है :—

अपरिट्ठिअमूलअल जत्तो गम्मइ तहि दलन्तमहि अलम्।
ण हु सलिलणिब्भरं चिअ खाविए त्रि ममम्मि दुग्गमं पाआलम्॥
६.१६॥

पानी के सूख जाने पर भी सागर संतरणशील नहीं हो सकता, उसको सेतु द्वारा अधिक सुगमता से पार किया जा सकता है।

वानर सेना असंख्य पर्वतों को सागर में डाल चुकी, पर सागर पर सेतु बनता नहीं दिखाई दिया। तब वानर पति ने चिन्ता प्रकट की, राम के क्रुद्ध हो जाने की संभावना की ओर संकेत किया। सुग्रीव सागर द्वारा सेतु प्रदान न किये जाने पर क्षुब्ध जान पड़ते हैं, इसी कारण राम के बाणों का उल्लेख करते हैं—'सागर के पाताल रूपी शरीर में गहराई से धसे हुए और उबलते हुए जल से आहत होकर शब्दायमान तथा मन्द शिखावाले राम के बाण अब भी धूमायित हो रहे हैं' (८:१६)। सुग्रीव द्वारा प्रस्तावित होने पर नल ने सेतु-निर्माण सम्बन्धी अपने कौशल को बड़े शालीन ढंग से स्वीकार किया। उसकी वाणी में आत्मविश्वास

है—'महासमुद्र के ऊपर, सुवेल और मलय के बीच पर्वतों को जोड़-जोड़ कर मेरे द्वारा बनाये सेतु पथ को आप सब देखें' (८:२१)। आगे उसकी वाणी में वीर दर्प तथा अत्युक्ति का अंश अधिक आ गया है। इस आवेश में वह मेघों के ऊपर वानरों के संचरण योग्य सेतु-पथ बनाने की बात कह जाता है, पर अन्त में उसकी वाणी में संयम पुनः आ जाता है और सेतु-निर्माण की वास्तविक प्रक्रिया का निर्देश देता है :—

तं मह मग्गा लग्गा विरएह जहागिरिओअनुक्कमहिहरा ।
अणुवाओ बद्धदाम अवगाहोन्तसुहबन्धणं सेउवहम ॥८:२६॥

ग्यारहवें आश्वास में रावण के मन का तर्क वितर्क दिया गया है, जिसमें उसके मन की स्वाभाविक स्थिति है। काम-पीड़ा से उद्वेजित होकर वह समीप आये हुए वानर सैन्य पर कुपित होता है, क्योंकि उसकी इच्छा में बाधा उपस्थित होने का सीधा कारण यही जान पड़ता है। वह सोचता है—'पति के विरह में भी प्रतिकूल रहनेवाली सीता भला पति की उपस्थिति में मेरी ओर आकर्षित होगी' (११:२६)। यह विचार तर्क संगत है। अन्त में वह हार कर सीता के संमुख राम के माया शीश को उपस्थित करने की बात सोचता है। वह राक्षसों को अत्यन्त संक्षिप्त आज्ञा देता है। आगे इसी आश्वास में सीता का विलाप है। राम के माया शीश को देख कर पहले सीता मूर्च्छित हो जाती हैं, बाद में उनको होश आता है तो वे अत्यन्त करुण विलाप करती हैं। सीता का हृदय वेदना से अभिभूत हो गया है। वे सोचती हैं कि 'इस दुःख का आरम्भ ही भयंकर है, अन्त होना तो अत्यन्त कठिन है' (११:७५)। उनको विगत जीवन की सुधि आती है—'घर के निकलने के समय से ही आरम्भ तथा अश्रु प्रवाह से ऊष्ण अपने हृदय के दुःख को, सोचा था, तुम्हारे हृदय से शांत करूँगी, पर अब किसके सहारे उसे शांत करूँ' (११ : ७७)। उनको सबसे अधिक ग्लानि यही है कि ऐसी स्थिति में भी वे जीवित हैं क्योंकि उनको विश्वास है कि 'तुम्हारा मिलन हो जाता यदि इस जीवन का अन्त हो जाता' (११ : ८०)। उनके मन

मे भर्त्सना का भाव है कि 'स्त्री-स्वभाव को त्याग देनेवाली मुझ जैसी की कोई बात भी नहीं करेगा' (११ : ८४)। इस विलाप मे स्त्रीजन सुलभ कोमल संवेदना के चरित्र के अनुरूप गरिमा भी है। त्रिजटा ने सीता को समझने मे तर्क तथा गहरी सहानुभूति का आश्रय लिया है। उसने प्रारम्भ में ही स्त्री मात्र के भीरु स्वभाव का उल्लेख करके अपनी बात के लिये आधार प्रस्तुत किया है :—

> अवरिगलिओ विसाओ अखरिडआ मुद्धआ ण प्रेच्छइ पेम्मम् ।
> मूढो लुवइसहाओ तिमिराहि वि दिणअरस्स चिन्तेइ भअम् ॥
> ११:८८॥

आगे त्रिजटा राम के असाधारणत्व का उल्लेख करती है, प्रमद वन के श्रीविहीन होने का निर्देश करती है तथा शिव द्वारा भी जिसके कण्ठच्छेद की कल्पना नही की जाती है, इस प्रकार के उल्लेखो द्वारा सीता को विश्वास दिलाना चाहती है। वह राक्षसो की माया का उद्-घाटन भी करती है। परन्तु उसका सबसे प्रबल तर्क है कि 'यह तो राम के प्रति तुम्हारा अनादर भाव है' (११ : ६६) और इससे वह सीता के मन को जीतना चाहती है। सीता की मनःस्थिति ऐसी नहीं है कि वह तर्क समझ सके, वह पुनः उसी प्रकार का विलाप करती है। उसके मन मे निराशा-जन्य मरण की प्रबल आकाङ्क्षा जाग्रत हुई है—'हे नाथ, मैंने राक्षसगृह का निवास सहन किया और आपका इस प्रकार का अन्त भी देखा, फिर भी निन्दा से धुँआता हुआ मेरा हृदय प्रज्वलित नहीं हो रहा हैं' (११ : १०४)। जब सीता ने मरण का अन्तिम निश्चय कर लिया, उस समय त्रिजटा ने बड़े ही मार्मिक और सामर्थ्य तर्क का आश्रय लिया :—

> जाणइ सिणेह भणिअं मा रअणिअरि त्ति मे जुउच्छसु वअणम् ।
> उज्जाणम्मि वणम्मि अ जं सुरहिं तं लआण गेह्णइ कुसुमम् ॥
> ११:११६॥

उसका कहना है कि राक्षसी होने के कारण उसकी प्रशंसा नहीं की जानी चाहिए; इस तर्क में त्रिजटा की भाषा और उसका प्रयत्न दोनों ही अन्तर्निहित हैं। वह अपने आत्मगौरव की बात भी कहती है—'यदि ऐसा होता तो मेरा साधारण जन के समान जीवन रहने के लिये आश्वासन देना मेरे लिये उचित होता' (११:१२१)। उसके मन का आत्मगौरव का यह भाव तब और भी स्पष्ट हो जाता है जब वह कहती है कि—'मैं आपके कारण इतनी दुःखी नहीं हूँ, जितना राम के जीवित रहते लज्जा त्याग कर इस तुच्छ कार्य को करते हुए रावण के उलटे स्वभाव के विषय में चिन्तित हूँ' (११ : १२७)। पर इस सब के साथ ही उसका यह प्रयत्न तो है ही कि किसी प्रकार वह सीता को आश्वासन दे सके।

नाग-पाश बन्धन में राम के वचनों में निराशा अधिक है। वे स्थिति से अत्यधिक प्रभावित हैं। यही कारण है कि उनके वचनों में भाग्य-वाद है—'संसार में ऐसा कोई प्राणी नहीं जिसके पास संसार का परिणाम उपस्थित न होता हो' (१४ : ४४)। इस अवसर पर उनके मन में सबके उपकारों का ध्यान है। वे इस सीमा तक निराश हैं कि सुग्रीव को सेना सहित सेतु-मार्ग से वापस जाने को कहते हैं और सीता के विषय में बिल्कुल निरपेक्ष हो गये हैं। इस अवसर पर पुनः सुग्रीव की वीर-दर्प की वाणी समयानुकूल है। इनके कथनोपकथनों के अतिरिक्त कुछ संक्षिप्त उल्लेख और भी हैं जो परिस्थिति और मनोभावों के अनुकूल हैं। लक्ष्मण राम से रावण से युद्ध करने की आज्ञा माँगते हैं, इस पर राम अपने सहज भाव को व्यक्त करते हैं—'आप लोगों के पराक्रम से मैं परिचित हूँ, पर रावण का वध बिना स्वयं किये क्या यह बाहु भारस्वरूप नहीं हो जायगा ?' (१५ : ६०)। राम की वाणी में जैसे याचना भाव हो :—

कुम्भअस्स पहत्थस्स अ दूसह णिहणेण इन्दइस्स अ समरे।
दसकण्ठं सुहवडिअं केसरिणो वणगअं व मा हरह महम् ॥१५:६१॥

रावण के प्रति प्रतिशोध की भावना इस कथन में स्पष्ट ध्वनित

है। अन्त में विभीषण के विलाप में उसके मन की ग्लानि है। वह अपने भाई के पक्ष को छोड़कर आया है और यह बात उसके मन को अन्त मे पीड़ा अवश्य पहुँचाती है—'तुम्हारा पक्ष न ग्रहण करने वाला मैं यदि धार्मिकों मे प्रमुख गिना जाऊँगा तो भला अधार्मिकों मे प्रमुख कौन गिना जायगा ?' (१५ : ८८)। यद्यपि विभीषण के चरित्र के साथ उसका यह कथन व्यंग्य के समान ही अधिक जान पड़ता है।

भावात्मक परिस्थितियाँ तथा मनोभावों की अभिव्यक्ति

मानवीय मनोभावो के चित्रण की दृष्टि से कालिदास के समकक्ष यदि कोई दूसरा कवि पहुँच सका है तो प्रवरसेन ही। रस के अन्तर्गत विभाव, अनुभाव तथा संचारियो आदि के वर्णन की बात दूसरी है। इस प्रकार के वर्णनों मे अन्य कवियों ने सूक्ष्मदृष्टि का परिचय दिया है। पर मानवीय जीवन के सहज तथा स्वाभाविक स्तर पर भावात्मक परिस्थितियो तथा मनोभावो की अभिव्यक्ति और उसका निर्वाह बिल्कुल भिन्न बात है। इस क्षेत्र मे कालिदास संस्कृत के कवियों मे अद्वितीय हैं। पर अन्तर्दृष्टि तथा संवेदनशीलता की दृष्टि से प्राकृत कवि प्रवरसेन कालिदास के निकट पहुँच जाते है। आगे के कवियो मे मनोवैज्ञानिक परिस्थितियों तथा सूक्ष्म मनोभावो के चित्रण के स्थान पर रूपात्मक स्थितियो तथा अनुभावों का चित्रमय वर्णन मिलता है। परन्तु प्रवरसेन ने मनुष्य के मन के नानाविध भावों को अनेक प्रकार से अभिव्यक्त करने का प्रयत्न किया है। और इस प्रकार के चित्रणों में भावों के सूक्ष्म छायातपों (shades) को कवि उतार सका है।

प्रवरसेन ने अनेक स्थलों पर भावो को व्यक्ति के वाह्य रूपाकार में अभिव्यक्त किया है। मनुष्य के आन्तरिक भावो की छाया उसके मुखादि पर प्रतिघटित हो जाती है। कवि इस प्रकार के चित्रण मे पूर्ण सफलता प्राप्त कर सका है—'हनूमान के जाने के बहुत समय बीत जाने पर सीता-मिलन के आशा-सूत्र के अदृश्य होने के कारण अश्रु-प्रवाह के रुक जाने

पर भी उनके मुख पर रुदन का भाव घना था' (१ : ३५)। इस चित्रमें राम के मन की निराशा, पीड़ा, क्लेश तथा निरुपायता प्रकट हो जाती है। आगे इसी प्रकार राम के आन्तरिक क्रोध को कवि ने भंगिमा में व्यंजित किया है :—

वाहमइलं वि तो से दहमुहचिन्ताविअम्भमाणामरिसम् ।
जाअं दुक्खालोअं जल्हाअन्तरविमण्डलं विअ वअणम् ॥१:४३॥

सुग्रीव के ओजस्वी भाषण के बाद जाम्बवान् की गम्भीर तथा विचारशील मुद्रा का अंकन कवि ने किया है—'निकटवर्ती छोटे श्वेत मेघखण्ड से जिसकी ओषधि की प्रभा कुछ खिन्न भी हो गई है ऐसे पर्वत के समान जाम्बवान् की दृष्टि बुढ़ापे के कारण झुकी हुई भौंहों से अवरुद्ध हुई' (४ : १७)। इस चित्रण में जाम्बवान् के व्यक्तित्व के साथ उनका उस क्षण का आन्तरिक भाव भी व्यक्त हुआ। वे समझते हैं कि केवल साहसपूर्ण वचनों से यह दुष्कर कार्य सम्भव नहीं हो सकता। प्रचलित अनुभावों के माध्यम से मनोभावों की व्यंजना में भी कवि सफल हुआ है :—

अह जणिअभिउडिभङ्गं जाअं भणुहुत्थलिअलोअणजुअलम् ।
अमरिसविहुणणकम्पं सिढिलजडाभारबंधणं तस्स मुहम् ॥५:१५॥

राम की वक्र भ्रुकुटियों से, कम्पित होकर ढीली पड़ गई जटाओं से उनका क्रोध प्रत्यक्ष हो जाता है। वानरों के अथक परिश्रम के बाद भी जब सागर पर सेतु न बन सका तब सुग्रीव ने नल से सेतु-रचना के लिए कहा, और उस समय उन्होंने तिरछे करके आयत रूप में स्थित बायें हाथ पर अपनी ठुड्डी का भार आरोपित कर रखा है, जिससे उनके मन का भाव स्पष्ट हो गया है। यहाँ सुग्रीव के मन का हतोत्साह, चिन्ता तथा व्यग्रता आदि व्यक्त की गई है (८ : १२)। नल के कथन के समय की भंगिमा में उसके मन की भावस्थिति परिलक्षित होती है :—

तो पवअवलाहि फुडं विएणाणामरूपणिल्वसन्तच्छाओ ।
पवअवइसंभमुम्मुहविइएणमअहित्थलोअणो भणइ णलो ॥८:१८॥

नल मे आत्मविश्वास, उद्विग्नता तथा आदर का भाव एक साथ प्रस्तुत किया गया है।

'सेतुबन्ध' मे न केवल मनोभावो को चरित्रों की बाह्य मुद्राओ मे प्रत्यक्ष किया गया है, वरन् मानसिक भाव-स्थितियो का सूक्ष्म चित्रण यत्र तत्र किया गया है। इस क्षेत्र मे कवि ने अपनी सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि के साथ संवेदनशीलता का परिचय भी दिया है। 'राघव द्वारा किये गये उपकार का बदला चुकाने का आकांक्षी सुग्रीव का हृदय उच्छ्वासित हो उठा क्योकि हनूमान द्वारा सीता का समाचार मिल जाने पर कार्य की दिशा निश्चित हो गई है' (१:४६)। इसी अवसर पर राम के [illegible] मे लंकाभियान की भावना स्थिर हुई है :—

चिन्तिअलद्धत्थं विअ भुमआविक्खेवसूइआमरिसरसम्।
गमणं राहवहिअए रक्खसजीविअहरं विसं व णिहित्तम् ॥१:४७॥

इसमें कवि ने रौद्र भाव, आत्मविश्वास तथा राक्षस कुल के नाश की संभावना को एक साथ उपस्थित किया है। सागर दर्शन के अवसर पर सुग्रीव के उत्साह को स्वाभाविक रूप मे प्रकट किया गया है—'सुग्रीव का वक्ष प्रदेश उन्नत तथा दीर्घ हो गया है और उन्होंने आधी छलाँग भर कर भी अपने शरीर को रोक लिया है' (२ : ४०)। इस प्रसग मे वानरो के विस्मय, आश्चर्य तथा कौतूहल को कौशल के साथ चित्रित किया गया है। सागर को देख कर वानर वीरो को अपूर्व विस्मय है पर उसको पार करनेवाले हनूमान के प्रति उनके मन में गौरव की भावना जाग्रत होती है :—

पेच्छन्ताण समुद्दं चडुलो वि अउव्वविम्हअरसत्थिमिओ।
हणुमन्तम्मि णिवडिओ सगोरवं वाणराण लोअणणिवहो ॥
२ : ४३ ॥

पवन-सुत को देख कर इन वानर वीरो के मोहतम से अंधकारित हृदय में उत्साह भी जाग्रत होता है' (२:४४)। भावो की विषम स्थिति को प्रवरसेन स्वाभाविक रूप में चित्रित करने में समर्थ हैं—

पर भी उनके मुख पर रुदन का भाव घना था' (१ : ३५)। इस चित्र में राम के मन की निराशा, पीड़ा, क्लेश तथा निरुपायता प्रकट हो जाती है। आगे इसी प्रकार राम के आन्तरिक क्रोध को कवि ने भंगिमा में व्यंजित किया है :—

बाहमइल पि लो से दहमुहचिन्ताविअम्भमाणामरिसम्।
जाअं दुक्खालोअं जरढाअन्तरविमण्डलं विअ वअणम् ॥१:४३॥

सुग्रीव के ओजस्वी भाषण के बाद जाम्बवान् की गम्भीर तथा विचारशील मुद्रा का अंकन कवि ने किया है—'निकटवर्ती छोटे श्वेत मेघखण्ड से जिसकी ओषधि की प्रभा कुछ खिन्न सी हो गई है ऐसे पर्वत के समान जाम्बवान् की दृष्टि बुढ़ापे के कारण झुकी हुई भौंहों से अवरुद्ध हुई' (४ : १७)। इस चित्रण में जाम्बवान के व्यक्तित्व के साथ उनका उस क्षण का आन्तरिक भाव भी व्यक्त हुआ। वे समझते हैं कि केवल साहसपूर्ण वचनों से यह दुष्कर कार्य सम्पन्न नहीं हो सकता। प्रचलित अनुभावों के माध्यम से मनोभावों की व्यंजना में भी कवि सफल हुआ है :—

अह जणिअभिउडिभङ्गं जाअं घणुहत्थवलिअलोअणजुअलम्।
अमरिसविइण्णकम्पं सिढिलजडाभारबंधणं तस्स मुहम् ॥५:१५॥

राम की वक्र भ्रुकुटियों से, कम्पित होकर ढीली पड़ गई जटाओं से उनका क्रोध प्रत्यक्ष हो जाता है। वानरों के अथक परिश्रम के बाद भी जब सागर पर सेतु न बन सका तब सुग्रीव ने नल से सेतु-रचना के लिए कहा, और उस समय उन्होंने तिरछे करके आयत रूप से स्थित बायें हाथ पर अपनी ठुड्डी का भार आरोपित कर रखा है, जिससे उनके मन का भाव स्पष्ट हो गया है। यहाँ सुग्रीव के मन का हतोत्साह, चिन्ता तथा व्यग्रता आदि व्यक्त की गई है (८ : १३)। नल के कथन के समय की भंगिमा में उसके मन की भावस्थिति परिलक्षित होती है :—

तो पवअवलाहि फुडं विसण्णसासङ्कपणिअन्तच्छाओ।
पवअवइसंभमुम्मुहविइण्णभअहित्थलोअणो भणइ णलो ॥८:१८॥

नल मे आत्मविश्वास, उद्विग्नता तथा आदर का भाव एक साथ प्रस्तुत किया गया है।

'सेतुबन्ध' मे न केवल मनोभावो को चरित्रों की बाह्य मुद्राओं में प्रत्यक्ष किया गया है, वरन् मानसिक भाव-स्थितियों का सूक्ष्म चित्रण यत्र-तत्र किया गया है। इस क्षेत्र मे कवि ने अपनी सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि के साथ संवेदनशीलता का परिचय भी दिया है। 'राघव द्वारा किये गये उपकार का बदला चुकाने का आकांक्षी सुग्रीव का हृदय उच्छ्वासित हो उठा क्योंकि हनूमान द्वारा सीता का समाचार मिल जाने पर कार्य की दिशा निश्चित हो गई है' (१:४६)। इसी अवसर पर राम के [illegible] मे लंकाभियान की भावना स्थिर हुई है :—

चिन्तिअलद्धत्थं विअ भुमआविक्खेवसूइआमरिसरसम्।
गमणं राहवहिअए रक्खसजीविअहरं विसं व णिहित्तम् ॥१:४७॥

इसमे कवि ने रौद्र भाव, आत्मविश्वास तथा राक्षस कुल के नाश की संभावना को एक साथ उपस्थित किया है। सागर दर्शन के अवसर पर सुग्रीव के उत्साह को स्वाभाविक रूप मे प्रकट किया गया है—'सुग्रीव का वक्ष प्रदेश उन्नत तथा दीर्घ हो गया है और उन्होंने आधी छलाँग भर कर भी अपने शरीर को रोक लिया है' (२ : ४०)। इस प्रसंग में वानरो के विस्मय, आश्चर्य तथा कौतूहल को कौशल के साथ चित्रित किया गया है। सागर को देख कर वानर वीरों को अपूर्व विस्मय है पर उसको पार करनेवाले हनूमान के प्रति उनके मन मे गौरव की भावना जाग्रत होती है :—

पेच्छन्ताण समुद्दं चडुलो वि अउव्वविम्हअरसत्थिमिओ।
हणुमन्तम्मि णिवडिओ सगोरवं वाणराण लोअणणिवहो ॥
२ : ४३ ॥

पवन-सुत को देख कर इन वानर वीरों के मोहतम से अंधकारित हृदय में उत्साह भी जाग्रत होता है' (२:४४)। भावों की विषम स्थिति को प्रवरसेन स्वाभाविक रूप मे चित्रित करने में समर्थ है—

'सागर को देख कर उत्पन्न विषाद से व्याकुल, जिनका वापस लौट जाने का अनुराग नष्ट हो गया है तथा पलायन के मार्ग से लौट आये है नेत्र जिनके ऐसे, वीर वानर किसी-किसी प्रकार आने-आप को ढाढ़स बँधा रहे हैं' (२:४६)। इस वर्णन में वानरों के मन की व्याकुलता विषाद, निराशा, आशा आदि को एक साथ प्रस्तुत किया गया है। राम के सागर पार उतरने के समाचार को पाकर सीता के मन की स्थिति भी इसी प्रकार है, उसमें कई भाव उठते हैं—'निकट भविष्य में युद्ध के कारण सीता अन्यमनस्क हैं, राम के बाहुओं के पराक्रम के परिचय में उनके मन का संताप शान्त हो गया है तथा रावण की कल्पना से चिन्तित और व्याकुल होती हैं' (११ : ४६)। राम लंका में आ गये हैं और युद्ध का निर्णय शीघ्र ही हो जायगा, इस सम्भावना से सीता के मन में अनेक भाव उठ रहे हैं। परन्तु राम उनके निकट आ गये हैं, इस कल्पना से सीता के हृदय में प्रेम की कई मनःस्थितियाँ भी उत्पन्न होती हैं :—

समुहालोअणविडिअं विडिअणिमिल्लपिअदंसणुसु अहिअ अम् ।
ऊसूअहिअउम्मिल्लं उम्मिल्लोसरिअपइमुहकिलिम्मन्लिम् ॥
११ : ५० ॥

परन्तु संस्कृत महाकाव्यों की जिस परम्परा में 'सेतुबन्ध' आता है उसमें चित्राकन की प्रवृत्ति विशेष रूप से पाई जाती है। इस कारण भावात्मक परिस्थितियाँ भी इन काव्यों में रूपाकार अथवा घटनात्मक परिस्थिति का अंश बन जाती है। वर्णना के सौन्दर्य के सम्मुख भाव-व्यंजना का महत्त्व कम हो गया है।

भावात्मक परिस्थितियों को अभिव्यक्त करने की एक शैली 'सेतुबंध' में यह भी है कि पात्रों की विभिन्न क्रियात्मक स्थितियों में उनको व्यंजित किया गया है। वास्तव में ये विभिन्न स्थितियाँ अनुभाव के रूप ही हैं। परन्तु इनका महत्व महाकाव्यों में इस कारण भी विशेष है कि इनके माध्यम से कवि भावों को चित्रमय आधार प्रदान करने में सफल हो सका

है। हनूमान से मणि अपने हाथ में लेकर राम ने 'अपनी अंजलि में आई हुई उस मणि को अपने नयनों से इस प्रकार देखा जैसे पी रहे हों और सीता का समाचार पूछ रहे हों' (१ : ४०)। इस स्थिति के चित्रण में राम के कितने गहरे मनोभाव को कवि प्रस्तुत कर सका है! आगे राम के अपने धनुष पर दृष्टिपात करने की स्थिति को भी कवि ने भाव-व्यंजना के साथ चित्रित किया है :—

तो से चिरमज्झन्थे कुविअकअन्तभुमआलआपापडिरूए।
दिठी दिढत्थामे कज्जधुव्व णिअए धणुम्मि णिसण्णा ॥२:४४॥

राम ने इस प्रकार धनुष को देखा जैसे वह उनके कार्य की धुरी हो अर्थात् उनके आत्म-विश्वास तथा आशा को ध्वनित किया गया है। सागर को देखकर 'राम ने उसकी अगाधता की इयत्ता को अपने नेत्रों से तौल लिया' (२ : ३७)। इस प्रकार कवि ने सागर के व्यापक और गहन प्रभाव का सुन्दर वर्णन किया है। लक्ष्मण द्वारा सागर-दर्शन का प्रभाव किस प्रकार ग्रहण किया गया, इसका कवि ने सूक्ष्म मनोभाव को व्यंजित करते हुए चित्रण किया है— 'जलराशि पर किंचित दृष्टि-निक्षेप कर तथा हँसते हुए वानरराज सुग्रीव से संलाप करते हुए लक्ष्मण ने समुद्र के देख लेने पर भी पहले (जब नही देखा था) के समान ही धैर्य को नहीं छोड़ा' (२ : ३६)। लक्ष्मण अपने स्वभाव के अनुकूल सागर के विराट स्वरूप को देख कर भी अविचलित हैं और उनमें आत्मविश्वास है, पर उनकी प्रत्यक्ष उपेक्षा में भी अदृश्य चिन्ता व्यंजित है। इसी अवसर पर वानरो की स्थिति का वर्णन है जिसमे अनुभावो की क्रियास्थिति में उनके मनोभाव प्रतिफलित हो जाते हैं :—

साअरदसणाहित्था अक्खित्तोसरिअवेवमाणसरीरा।
सहसा लिहिअव्व ठिआ णिप्पन्दणिराअलोअणा कइणिवहा ॥२:४२॥

त्रास, आतंक, भय तथा स्तब्धता आदि का सफल अकन हुआ है। परिस्थित विशेष में किसी चरित्र को क्रिया स्थिति के साथ इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है कि उस क्षण का उसका मनोभाव स्पष्ट हो गया

है। सुग्रीव के अभिभाषण का विभिन्न वानर वीरों पर जो प्रभाव पड़ा है। उसका कवि ने सजीव वर्णन किया है। समस्त वानर सेना किंकर्तव्य विमूढ़ और हतप्रभ थी, पर सुग्रीव के दर्पपूर्ण वचनों को सुन कर उसमें उत्साह का सञ्चार होता है। इसी उत्साह की अभिव्यक्ति अनेक वानर वीरों में भिन्न प्रकार से हुई है, परन्तु उनकी क्रियाओं से अनेक सूक्ष्म भाव भी साथ-साथ व्यंजित हुए हैं। ऋषभ ने उत्साह के आवेश में अपने बायें हाथ के कन्धे पर रखे हुए पर्वत-शृङ्ग को ध्वस्त कर दिया। नील आन्तरिक हर्ष से रोमाञ्चित अपने वक्ष को बार-बार पोंछ रहे हैं, और इस प्रकार उसके मन में आविर्भूत होती हुई संकल्प की भावना भी व्यक्त हुई है। मैन्द ने दोनों भुजाओं से चन्दन वृक्ष को जोर से झकझोर दिया, जिसमें उसका आवेशात्मक उल्लास व्यक्त होता है। शरभ क्रोध की विवशता में अपने शरीर को खुजला रहा है (४:३-१३)। इस प्रसंग में भावों की इस प्रकार की सूक्ष्म व्यंजना के साथ पात्रों के चरित्र भी व्यक्त हुए हैं। सुग्रीव का अपने वचनों के प्रभाव को देख कर आत्मसन्तोष प्रकट करना स्वाभाविक है :—

> णिब्भच्छिओअहिरवं फुडिआहरणिव्वडन्तदाढाहीरम।
> हसइ कइदप्पसमिअरोसविरज्जन्तलोअणो सुग्गीवो ॥४ : १४॥

दशवें आश्वास के अन्तर्गत संभोग-वर्णन में तथा ग्यारहवें में रावण की विरह-व्यथा में परम्परागत अनुभावों का विस्तार है जिनमें अनेक भावों को प्रकट करनेवाली क्रियास्थितियाँ आ जाती हैं। 'प्रियतमों के दर्शन में नाच उठा युवतियों का समूह विमूढ़ हुआ बालों का स्पर्श करता है, कड़ों को खिसकाता है, बालों को यथास्थान करता है और सखी-जनों से व्यर्थ की बातचीत करता है' (१० : ७०)। इस वर्णन में उल्लास, विमुग्धता, तत्परता तथा विस्मरण आदि भावों को एक साथ अभिव्यक्त किया गया है। रावण के मन की चिन्ता, खिन्नता तथा विवशता आदि इस प्रकार उसकी विभिन्न क्रियाओं से व्यक्त होती है :—

चिन्तेइ ससइ जूरइ बाहुं परिमुसइ धुणइ मुहसंघाअम् ।
हसइ परिओससुण्णा भीआणिप्पसर वम्महोद्दहवअणो ॥ ११ : ३ ॥

भावात्मक परिस्थितियों को एक अन्य रूप में भी अंकित किया गया है । ऐसे अंकन समस्त वस्तु-स्थिति के साथ हुए है और इनमें कवि की वर्णनो को चित्रमय करने की प्रतिभा का परिचय भी मिलता है । ऐसे चित्र प्रायः किसी एक पात्र के दूसरे पात्र को सम्बोधित करके कथन करने के अवसर के है । इनमें पात्र के कथन के समय की भंगिमाएँ, क्रिया-स्थितियाँ तथा मनोभाव एक साथ वस्तु-स्थिति के पूर्ण चित्र के रूप मे उपस्थित हुए हैं । सागर को देख कर स्तब्ध हुए वानर सैन्य को सम्बोधित करते हुए सुग्रीव जब कथन आरम्भ करते है, उस समय कवि भावमय चित्र प्रस्तुत करता है—'सुग्रीव ने, अपने कथन की ध्वनि से अधिक स्फुट रूप से उच्चारित होते यशनिघोष (साधुवाद) के साथ धैर्य के बल से गौरवयुक्त तथा दाँतों की चमक से धवलित अर्थ वाले वचन कहे' (३ · २) । आगे जाम्बवान् ने सुग्रीव को जब समझाते हुए कहना प्रारम्भ किया, उस समय उनका चित्र भावात्मक रेखाओं मे सामने आता है .—

जम्पइ रिच्छाहिवई उण्णामेऊण महिअलद्धन्तणिहम् ।
खलिअवलिभङ्गदाविअविरथअवहलवणकंदरं वच्छअडम् ॥
४ : १९॥

सुग्रीव से कह चुकने बाद जाम्बवान् रामकी ओर उन्मुख हुए और उस समय (बोलते समय) 'उनका विनय से नत मुख चमचमाते दाँतों के प्रभा समूह से व्याप्त है, जिसमे किरणें किंजलक सी जान पड़ती है और मुड़ते समय सफ़ेद केसर (सटा) उलट कर सामने की ओर आ गई है' (४ : ३८)। इस चित्र मे वस्तु-स्थिति के सौन्दर्य के साथ भावमयता की व्यंजना भी है । प्रवरसेन स्थिति के संकेत मात्र से चित्र को भासित करने मे समर्थ हैं—'निसर्ग शुद्ध हृदय के धवल निर्झर के समान अपने दाँतों के प्रकाश को एक साथ ही दसों दिशाओ मे विकीर्ण करते हुए

राम बोले (४ : ५८)। राम के इस प्रकार हँस कर विभीषण से बोलने में सुन्दरता के साथ भाव-व्यंजना भी है। मरण की भावना से प्रेरित होकर जब सीता ने त्रिजटा से आदेश माँगा है, उस समय का चित्र ऐसा ही है :—

> तो तं दट्ठूण पुरो मरणेक्करसगाह वाहणं मान्छम्।
> आउच्छनुमं ति कअं तिअडागअलोअणाइ दीणविहसिअम ॥
> ११ : १२३ ॥

सीता की मुस्कान में कितनी करुणा है और उनके सूने नेत्रों में कितनी निराशा है!

'सेतुबन्ध' में प्रकृति

महाकाव्य की शैली में प्रकृति के प्रमुख रूपों के वर्णन की परम्परा निश्चित हो गई थी। जैसे कहा गया है, धीरे-धीरे बाद के महाकाव्यों में प्रकृति वर्णन रूढ़ि वादी हो गये हैं। परन्तु 'सेतुबन्ध' में प्रकृति का अधिकांश विस्तार प्रमुख कथा से सम्बद्ध होकर प्रस्तुत हुआ है। प्राकृतिक स्थलों में 'सेतुबन्ध' में पर्वत, वन, सागर, सरिता तथा आकाश का वर्णन है। इनमें सेतु-निर्माण की विस्तृत प्रक्रिया को सम्मिलित किया जा सकता है। पर्वतों का वर्णन विभिन्न स्थितियों तथा प्रसंगों में किया गया है। वानर सेना पर्वतों को उखाड़ती है, उनको लेकर आकाश-मार्ग से चलती है, फिर सागर में उनको फेकती है। इस सारी प्रक्रिया में पर्वतों की विभिन्न स्थितियों का चित्रण किया गया है। पर्वतों के साथ ही उसके वनों, नदियों, निर्झरों और पशुओं आदि का भी वर्णन किया गया है। पर्वतों की इन विभिन्न स्थितियों की कल्पना में प्रवरसेन की अद्भुत कल्पना शक्ति का पता चलता है, साथ ही सौन्दर्य की विराट उद्भावना के दर्शन भी होते हैं। आगे चलकर सुवेल पर्वत का वर्णन किया गया है। सागर पार उतर जाने के बाद वानर सैन्य सुवेल पर्वत को देखता है। इस वर्णन में कवि ने आदर्श-कल्पनाओं का आश्रय लिया है। वनों का वर्णन स्वतन्त्र रूप में केवल मार्ग में किया गया है। वस्तुतः वन पर्वतों

के साथ आ जाते हैं और उनकी कल्पना सरिता, सरोवर तथा निर्झरों से अलग नहीं की जा सकती। ये समस्त प्रकृति रूप इसी प्रकार प्रस्तुत भी हुए है। सागर का इस महाकाव्य मे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसी कारण इसका वर्णन अधिक विस्तार से किया गया। समुद्र-तट पर पहुँच कर वानर सेना के साथ राम सागर को देखते हैं। सागर अपने विराट विस्तार में फैला है। कवि उसके सूक्ष्म-से-सूक्ष्म छायातपों और भावों से परिचित है। आगे राम के बाण से विक्षुब्ध सागर का सजीव वर्णन है। बाद में सागर मानव रूप मे राम के सम्मुख प्रस्तुत होता है। सेतु-निमाण के बाद सागर का पुनः वर्णन किया गया है, पर सेतु-निर्माण तथा सेतु-पथ अपने आपमें स्वतन्त्र विषय हैं।

प्रकृति के अन्तर्गत कालों के वर्णन का महत्त्वपूर्ण स्थान है। काल के दो रूप प्रायः पाये जाते हैं। एक तो काल का लम्बा विभाजन जो ऋतुओं के रूप मे है और दूसरा समय के रात-दिन के बीच के परिवर्तन से सम्बन्धित प्रातः सायं सन्ध्याएँ तथा छाया-प्रकाश की विभिन्न स्थितियाँ हैं। 'सेतुबन्ध' की कथा का प्रारम्भ वर्षा काल के बाद शरद् ऋतु के वर्णन से किया गया है। दसवें आश्वास मे कवि सायंकाल तथा रात्रि का वर्णन करता है जिसमें सूर्यास्त, अन्धकार-प्रवेश, चन्द्रोदय के चित्र उपस्थित किये गये हैं। बारहवें आश्वास मे प्रातः सन्ध्या का चित्रण किया गया है। इन समस्त प्रकृति सम्बन्धी वर्णनो में बहुत कम स्थान ऐसे है जिनका सम्बन्ध कथा-वस्तु के विकास से बहुत घनिष्ठ नहीं है।

महाकाव्यो के साधारण वर्णन अथवा संश्लिष्ट वर्णना शैली का रूप अधिक नहीं पाया जाता। महाप्रबन्ध काव्य के कथाप्रवाह मे इन शैलियों का प्रयोग विशेष रूप से हुआ है। पर महाकाव्य काव्यात्मक तथा अलंकृत शैली मे लिखे गये है। इनमें वर्णित वस्तु, वस्तु-स्थिति, क्रिया-स्थिति अथवा परिस्थिति को चित्रमय आकार प्रदान करने की विशेष

प्रकृति सांश्लिष्ट होता है। महाकाव्यों में प्रत्येक चित्र की समग्रता तथा एकाग्रता के साथ अंकित करते हुए कवि आगे बढ़ता है। यही कारण है कि प्रस्तुत काव्य में (जैसा कि अन्य प्रमुख महाकाव्यों के विषय में भी सत्य है) प्रत्येक वर्णन चित्रों के अंकन की सुंदर शृंखला जान पड़ते हैं। और एक के बाद एक चित्र के सम्मुख आते रहने के कारण इन सबका समवेत प्रभाव दृश्यबोध पर गतिशील रूप में चलचित्र के समान जान पड़ता है। साथ ही इन चित्रों की अंकन शैली आदर्श है। इस सौन्दर्य की आदर्श भावना के कारण अनेक बार यथार्थवादी दृष्टि से इसका मूल्यांकन करने से वास्तविक तथ्य प्राप्त नहीं होता। इस सौन्दर्य के अर्थ को ग्रहण करने के लिए यह जान लेना आवश्यक है कि संस्कृत के कवि और उनके साथ प्राकृत कवि (प्रवरसेन) भी सौन्दर्य्य की उत्कृष्ट उद्भावना कल्पना के आदर्श-चित्रों में ही स्वीकार करते है। कवि प्रकृति के सौन्दर्य्य की अनुकृति नही करता, वरन् उसके सौन्दर्य की कल्पना अपनी प्रतिभा के आधार पर करता है और पुनः उसी सौन्दर्य्य का सादृश्य अपने काव्य मे उपस्थित करता है। अतः इन महाकाव्यों के प्रत्येक चित्र के सम्बन्ध मे यह विचार करना कि यह यथार्थ जगत् से लिया गया है या नहीं, उचित नहीं है। प्रवरसेन की उर्वर कल्पना में यथार्थ का आधार होते हुए भी प्रकृति में नवीन सौन्दर्य्य की सृष्टि की गई है। सेतु-बंधन का सारा प्रसंग प्रकृति की नवीन तथा अद्भुत उद्भावना से संयोजित है और सुवेल पर्वत के वर्णन मे भी कवि ने आदर्श कल्पना का आश्रय अधिक लिया है।

प्रकृति के क्रिया-व्यापारों की संश्लिष्ट साधारण वर्णना के रूप में महाकाव्यों मे नहीं मिलती। प्रस्तुत काव्य अलंकृत काव्यों की परम्परा में आता है, पर स्वभावोक्ति को इसमें विशेष स्थान मिल सका है। यत्र तत्र अलंकृत-वर्णनों के बीच में सहज वर्णना का सुन्दर रूप मिल जाता है—'किसी एक भाग में वृष्टि हो जाने से किञ्चित जलकण युक्त तथा धुले हुए शरत्काल के दिन, जिनमें सूर्य का आलोक स्निग्ध हो गया है,

किंचित शुष्क शोभा धारण करते हैं' (१ : २०)। इस ऋतु के कोमल प्रकाशवान् दिनों का स्वाभाविक वर्णन इस प्रकार किया गया है। वस्तु स्थिति का वर्णन भी मिल जाता है—'अब छितौन का गन्ध मनोहारी लगता है, कदम्बों के गन्ध से जी ऊब गया है, कलहसों का मधुर निनाद कर्णप्रिय लगता है, पर मयूरों की ध्वनि असामयिक होने के कारण अच्छी नहीं लगती' (१ : २३)। इन वर्णनों में प्रकृति के क्रिया-व्यापारों की संश्लिष्ट योजना के साथ कवि के सूक्ष्म पर्यवेक्षण का पता भी चलता है :—

पङ्कक्खसलिलधोए दूरालोक्कन्तणिम्मले गअणअले ।
अच्चासरणं व ठिअं विमुक्कपरभाअपाअडं ससिबिम्बिम् ॥१:२५॥

निर्मल दिशाओं में प्रकाशित चन्द्रमा निकट ठहरा हुआ दिखाई देता है। इसी प्रकार सायं सन्ध्या के वर्णनों में भी ऐसे अनेक चित्र हैं—'दिन की एक हल्की आभा शेष रह गई है, दिशाओं के विस्तार क्षीण से हो रहे है, महीतल छाया से अन्धकारपूर्ण हो रहा है और पर्वतों की चोटियों पर थोड़ी-थोड़ी धूप शेष रह गई है' (१० : ६)। परन्तु व्यापक रूप से वर्णन आदर्श वस्तु-स्थितियों के ही हैं (देखिए—सुवेल वर्णन)।

'सेतुबन्ध' की प्रधान शैली चित्रात्मक है। शैली के उत्कर्ष की दृष्टि से प्रवरसेन कालिदास के सबसे अधिक निकट हैं। आगे के कवियों में चित्रात्मक शैली का क्रमशः ह्रास हुआ है। काव्यात्मक सौन्दर्य के लिए स्वतः सम्भावी अप्रस्तुत योजना ही सर्वश्रेष्ठ मानी जा सकती है। काव्य में स्वाभाविक चित्रमयता शैली के उसी रूप में आती है। इस प्रकार के प्रकृति के वर्णनों में कवि प्रकृति के प्रस्तुत दृश्य को अप्रस्तुत दृश्य के आधार पर अधिक व्यक्त तथा व्यंजित करता है। प्रवरसेन की कल्पना में यथार्थ जगत् के स्थान पर आदर्श सौन्दर्य की उद्भावना अधिक है। पर अनेक स्थलों पर चित्रांकन की यह शैली पाई जाती है—'वर्षाकाल में आकाश-वृक्ष की डालियों के समान जो झुक गई थीं और अब मुक्त हो गई हैं तथा जिनके बादल रूपी भौंरे उड़ गये हैं, ऐसी दिशाएँ शरत्

ऋतु में पूर्ववत् यथास्थान हो गई हैं (१ : १६)। आकाश में बादल विलीन हो गये हैं इस बात को व्यक्त करने के लिए कवि झुकी हुई डालों वाले वृक्ष से भ्रमरों के उड़ जाने की सहज कल्पना करता है। आदर्शीकरण की प्रवृत्ति प्रवरसेन की प्रमुख प्रवृत्ति है, और वह उनके इन चित्रों में भी व्यक्त हुई है -- 'आकाश रूपी समुद्र के रजनी-तट पर बिखरे हुए शुभ्र किरणवाला तारा रूपी मोतियों का समूह मेघ-सीपी के सपुट के खुलने से बिखरा हुआ सुशोभित है' (१ : २२)। यहां कवि ने सहज प्रकृति के लिए स्वतः सम्भावी आदर्श से उपमान ग्रहण किया है, क्योंकि सीपी से मोती की सम्भावना और सागर में सीपी की सम्भावना स्वाभाविक होते हुए भी सागर-तट पर मोतियों का बिखरा रहना आदर्श कल्पना है। परन्तु अनेक बार चित्र और कल्पना दोनों संभावना के प्रकृत क्षेत्र में ही प्रस्तुत अप्रस्तुत रूप में सामने आते हैं :—

बोलन्ति अ पेच्छन्ता पडिमासंकन्तधवलघणसंघाए ।
फुडफडिअसिलासंकुलक्खलिओवरिपत्थिए विअ णइप्पवहे ॥
१ : ५७ ॥

नदी के प्रवाह में बादलों की छाया पड़ती है और उसको कवि स्फटिक शिलाओं के समूह से टकरा कर उसके ऊपर से प्रवाहित नदी के समान बता कर चित्र को अधिक व्यंजित करता है।

उपर्युक्त शैली के अन्तर्गत अप्रस्तुत योजना की वह स्थिति है जिसमें कवि अपनी कल्पना में वास्तविक स्थितियों के नवीन संयोग उपस्थित करने के लिए स्वतंत्र होता है। इस स्वतंत्र संयोग को प्रौढ़ोक्ति सम्भव माना गया है। प्रवरसेन ने इस प्रकार के वर्णनों में पूर्ण सफलता प्राप्त की है; विशेषकर वह अपनी आदर्श उद्भावनाओं में इसका आश्रय ले सके हैं। इस प्रकार की कल्पनाएँ अत्यन्त सुन्दर हैं जिनमें पौराणिक संदर्भ आ गये हैं—'भास्कर की किरणों से चमकने वाला मेघश्री का रत्नजटित काँचीदाम (तगड़ी), वर्षा रूपी कामदेव के अर्द्ध चन्द्राकार बाण पात्र तथा आकाश रूपी पारिजात के फूल के केसर जैसा इन्द्र-धनुष अब लुप्त

हो गया है' (१ : १८)। इस चित्र में कोमल कल्पना है। इसी प्रकार सन्ध्या वर्णन के प्रसंग में पौराणिक कल्पना का कवि आश्रय लेता है—'सन्ध्या के विपुल राग को नष्ट कर तमाल-गुल्म की भाँति काला-काला अन्धकार फैल गया, जैसे कांचन तट-खंड को गिरा कर कीचड़ लपेटे ऐरावत हाथी के देह खुजलाने का स्थान हो' (१० : २५)। यहाँ प्रौढोक्ति में वैचित्र्य का आग्रह प्रकट हुआ है। इसी प्रकार पद्मरागमणि की शिलाओं पर द्वितीया के चाँद की छाया को सूर्य के घोड़ों की टापों से चिह्नित कहा गया है।

रअणीसु उव्वहन्तं एक्कक्का अम्बमणिसिलासकन्तम्।
सुद्धमिअङ्कच्छाअं खुरमुहमग्गं व रइतुरंगाण ठिअम्॥ ६: ५४॥

चित्रात्मक शैली का प्रयोग प्रकृति के रूपों को मानवीय जीवन के माध्यम से भावव्यंजित करने के लिये भी किया गया है। इसमें अप्रस्तुत रूप में मानवीय जीवन की विभिन्न परिस्थितियाँ ली जाती हैं। कहीं-कहीं यह अप्रस्तुत विधान प्रकृति के क्रिया-व्यापारों में मानवीय अनुभावों के आरोप से किया गया है—'सागर से मिल कर फिर पीछे लौटती हुई, मिलन-प्रत्यावर्तन की इच्छा से कम्पित चंचल तरंगों वाली नदी वापस होकर फिर तरंगहीन हो सागर में मिल जाती है' (१ : १६)। यहाँ इस वर्णन में नवयुवती के समागम की कल्पना व्यंजित भर है। इस प्रकार की वर्णन शैली अधिक नहीं अपनाई गई है, काल-वर्णन के प्रसंगों में इसका कुछ प्रयोग अवश्य किया गया है। कभी व्यापक अर्थ में मानव जीवन का आरोप है—'गैरिक पंक से पंकिल मुखवाला दिवस रात्रि भर घूम कर और कमल सरोवरों को संक्षुब्ध कर लौट आया है' (१२:१७)। इस शैली में वैचित्र्य का आग्रह बढ़ जाना सहज हो जाता है— 'प्रवास के समय वर्षा काल रूपी नायक ने दिशा (नायिका) के मेघ रूपी पीन पयोधरों में इन्द्रधनुष के रूप में प्रथम सौभाग्य-चिह्न स्वरूप जो नखक्षत्र लगाये थे, वे अब बहुत अधिक मलीन हो गये हैं' (१ : २४)। इस चित्र में भाव्य-व्यंजना के स्थान पर वैचित्र्य पूर्ण रूपाकार का आरोप ही

प्रधान है [illegible] अप्रस्तुत [illegible] से [illegible] साथ ही [illegible] चित्रा में भाव व्यंजना सुन्दर बन पड़ी है—

सअरङ्कुअं विद्‌दुमपल्लवग्गहाभोलिरसामअरङ्कअन् ।

रविराइअं धरणिअलं व मन्दराअइत्तणुद्दलोअरणइत्थम् ॥ २ : १६ ॥

इस चित्रांकन में पौराणिक कल्पना के साथ प्रकृति में मानवीय भावना को व्यंजित किया गया है। ऐसा जान पड़ता है कि कोई नव वधू संचरण कर रही है और प्रिय प्रियतम का संलाप चल रहा हो।

कभी प्राकृतिक स्थितियों के लिये अन्य वस्तु-स्थितियों को अप्रस्तुत रूप में स्वीकार किया गया है। ऐसे चित्रणों में अप्रस्तुत-विधान प्रायः स्वतः सम्भावी है—'दूर तक ऊपर उछलकर वापस आया, सामने से गिरते हुए बाण समूह के आघात में खण्डित समुद्र, कुल्हाड़ी से छिदे वेग से ऊपर उछलते काठ की भाँति आकाश को दो भागों में बाँट रहा है' (५ : ३५), इसमें प्रस्तुत आदर्श कल्पना है, पर अप्रस्तुत, सहज जीवन से ग्रहण किया गया है। कभी अप्रस्तुत कल्पना के रूप में कवि ने भविष्य की घटना की सूचना दी है—'फिर दिन का अवसान होने रुधिरमय पंक सी सन्ध्या-लाली में सूर्य इस प्रकार डूब गया, जैसे अपने रुधिर के पंक में रावण का शिर मंडल डूब रहा हो' (१० : १५)। कुछ चित्रों में इस प्रकार के प्रयोग से दृश्य अधिक सुन्दर हो गया है—

अत्थसिहरम्मि दीसइ मेरुअडुग्गुट्ठकणअकद्दसअम्बो ।

वलमाणतुरिअरविरहपडिउद्धिअधअवडोव्व संभाराओ ॥१० : १६ ॥

यहाँ मेरु के पार्श्व की आदर्श कल्पना के साथ सन्ध्या राग के लिये सूर्यरथ के गिरे हुए ध्वज की उपमा दी गई है। यह अप्रस्तुत का भी प्रौढोक्ति संभव है। कई स्थलों पर सहज कल्पना से कवि ने प्रकृति के चित्र को अत्यंत सुन्दर बना दिया है—'चन्द्रमा ने पूर्ववत् निखरे हुए शिखर समूह, फैले हुए दिशा मंडल तथा व्यक्त हुए नदी प्रवाह वाले पृथ्वीतल को मानो शिल्पी के समान अंधकार में गढ़कर उत्कीर्ण कर दिया है।' (१० : ३६) इससे स्पष्ट है कि प्रवरसेन की कल्पना में विराट के साथ

कोमल का भी संयोग हुआ है। ऐसे चित्रों में भी वैचित्र्य का रूप परिलक्षित हुआ है, पर उसमें कलात्मकता ही प्रधान है :—

होइ णिराअअलम्बो गवक्खपडिओ दिसागअस्स व ससिणो।
कसणमणिकुट्टिमअले गेह्णन्तो सरजलं व्व करपब्भारो॥ १० : ४६ ॥

नीलमणि की फर्श पर किरण समूह को दिग्गज की सूँड़ की तरह लम्बी कहना मात्र ऊहात्मक कल्पना नहीं है।

बाद के महाकाव्यों में चमत्कृत करने वाले वैचित्र्य का जो रूप मिलता है वह उत्कर्ष काल के महाकाव्यों में नहीं मिलता है। वैचित्र्य का मूल रूप इन कवियों मे भी मिलता है, पर इसका ऊहात्मक वैचित्र्य के रूप में विकास बाद के कवियों में हुआ है। इस दृष्टि से प्रवरसेन उत्कर्ष काल के कवि हैं और कालिदास के निकट जान पड़ते हैं। प्रवरसेन की आदर्श कल्पनाओं में स्थितिजन्य वैचित्र्य बहुत अधिक है। जैसा कहा गया है उसने अपनी कथा-वस्तु में इन आदर्श कल्पनाओं के लिये उपयुक्त परिस्थितियाँ निर्मित कर ली हैं। पर वर्णन शैली में वैचित्र्य का आग्रह प्रवरसेन में कम है। वरन् अनेक बार तो कवि ने आदर्श कल्पनाओं को व्यंजित करने के लिए सहज अप्रस्तुत-विधान का आश्रय लिया है। वैचित्र्य का आग्रह मानवीय आक्षेपों में कुछ परिलक्षित हुआ है—'समुद्र के वेलालिंगन में छोड़ी हुई, स्पर्श के अनन्तर संकुचित होकर काँपती हुई, कम्प से हिल रहा है वन-समूह रूपी हाथ जिसका ऐसी पृथ्वी मलय-पर्वत रूपी स्तनों के शीतल हो जाने से सुखी थी' (२:३२)। आगे के कवियों में इस प्रकार के आरोप की प्रवृत्ति अधिक वैचित्र्यमूलक होती गई है। आदर्श वर्णनों के साथ पौराणिक कल्पना के संयोग से भी वैचित्र्य की सृष्टि हुई है :—

कसणमणिच्छाआरसरञ्जमाणो परिप्लवमानफेनम्।
हरिनाभिपङ्कजस्खलित शेषनिःश्वासजनितविकटावर्तम्॥२:२८॥

शेष की निःश्वास से विष्णु की नाभि के कमल के उद्वेलित होने से सागर रूपी भ्रमर की कल्पना ऐसी ही मानी जायगी।

कहा गया है कि संस्कृत के महाकाव्य वर्णना प्रधान होते हैं; प्राकृत महाकाव्य 'सेतुबन्ध' भी इसी परम्परा में आता है। इनकी प्रवृत्ति चरित्र के घटनात्मक विकास की ओर नहीं है; इनमें घटना चरित्र की व्याख्या मात्र करती है। इस दृष्टि से पहले महाकाव्यों में अपेक्षाकृत घटनाओं का आग्रह अधिक है और प्रकृति के वर्णन घटनाओं से सम्बद्ध हैं। प्रकृति मानव जीवन का आधार है, उसके जीवन की समस्त घटनाओं की क्रीड़ा-भूमि प्रकृति है। प्रवरसेन ने देश-काल तथा स्थिति के रूप में प्रकृति का वर्णन घटनाओं की पृष्ठभूमि में किया है। 'सेतुबन्ध' में देश का निर्देश स्थान-स्थान पर हुआ है। राम की सेना सहित यात्रा के वर्णन में कवि ने देश का रूप भली-भाँति अंकित किया है—'इस प्रकार वे वानर वीर सह्य पर्वत जा पहुँचे, जिसकी जल बूँदों से आहत धातुवर्णों की शिलाओं पर स्थित होने के कारण वे किंचित रक्ताभ से शोभित हो रहे हैं तथा जिसके निर्झर रूप में हँसते हुए कन्दरा-मुख से बकुल पुष्प की गंध के रूप में मदिरा का आमोद फैल रहा है।' (१:५६) इसी प्रकार वानर सैन्य जब सागर तट पर पहुँचता है, तो कवि उसका अंकन करता है :—

विअसिअतमालणीलं पुणो पुणो चलतरङ्गकरपरिमट्ठम्।
फुल्लैलावणसुरहिं उअहिगइन्दस्स दाणलेहं व ठिअम्॥१:६३॥

वैसे तो सागर का आगे विस्तृत वर्णन है, परन्तु यहाँ तट-भूमि को वानर सैन्य के तट पर पहुँचने की घटना के आधार रूप में प्रस्तुत किया गया है।

महाकाव्यों में विभिन्न देशों (पर्वत, सागर आदि) के वर्णनों के समान विभिन्न कालों (ऋतुओं तथा प्रातः सायं सन्ध्याओं आदि) के वर्णन की परम्परा रही है। परन्तु कथावस्तु को आधार प्रदान करनेवाले काल का छायातप अथवा चित्रण कहीं-कहीं ही किया गया है। 'सेतु-बन्ध' की कथा का आरम्भ वर्षाकाल के अन्त तथा शरद् के आगमन से हुआ है। कवि ने इसका सुन्दर आधार प्रस्तुत किया है—'राघव ने वर्षा-

कालीन पवन के झोंके सहे, मेघों से अंधकारित गगनतल को देखा और मेघों के गर्जन को भी सहन कर लिया, पर शरद् ऋतु में जीवन के सम्बन्ध में उनका उत्साह शेष नहीं रहा।' प्रवरसेन ने कई स्थलों पर समय के निर्देश में घटना सम्बन्धी संकेतों को सन्निहित कर लिया है। राम की यात्रा के अनुकूल शरद् को कवि 'सुग्रीव के यश के मार्ग के समान राघव के जीवन के लिये प्रथम अवलम्ब के समान और सीता के अश्रुओं को दूर करने वाले रावण के वध-दिवस के समान आया हुआ' (१:१५,१६) कहता है। आगे सेना के सुवेल पर्वत पर पहुँच जाने के बाद सन्ध्या होती है और इस सन्ध्या के चित्र में रावण की मनःस्थिति को व्यंजित किया गया है :—

ताव अ आसण्णट्ठिअकइबलणिग्घोसकलुसिअस्स भअअरम् ।
दसवअणस्स समोसरिअपरिअणं मुअइ दिट्ठिवाअं दिवसो ।।१०:५।।

वास्तव में प्रकृति के व्यापक विस्तार में देश काल की स्थिति अलग अलग नहीं होती है। प्रकृति का प्रत्येक दृश्य अपनी रूपात्मक स्थिति में देश-काल दोनों के छाया-प्रकाश से व्यक्त होता है। अधिकांश वर्णनों में कवि का उद्देश्य देश-काल को अंकित करना न होकर केवल प्रकृति-स्थिति को उपस्थित करना होता है। प्रवरसेन ने अपनी कथा में प्रकृति का घटनास्थली के रूप में व्यापक प्रयोग किया है, इसका उल्लेख किया जा चुका है। यह भी कहा गया है कि प्रवरसेन की प्रमुख प्रवृत्ति प्रकृति को आदर्श रूप में प्रस्तुत करने की है। परन्तु कवि ने प्रकृति के स्वाभाविक तथा यथार्थ चित्रों को भी दिया है। काल के वर्णनों में अपेक्षाकृत अधिक यथार्थ चित्र हैं, जब कि सागर तथा सुवेल के चित्रण में कवि ने आदर्श कल्पनाओं का आश्रय लिया है। शरद् काल का वर्णन करते हुए कवि कहता है—'वर्षा-काल में आकाश—वृक्ष की डालियों के समान जो झुक गई थीं और अब मुक्त हो गई हैं तथा जिनके बादल रूपी भौंरे उड गये हैं, ऐसी दिशाएँ अब पूर्ववत् यथास्थान हो गई हैं' (१:१९)। काल सम्बन्धी स्थितियों में सहज चित्र मिल जाते हैं। कवि

ने चाँदनी में वृक्ष की छाया का पर्यवेक्षण यथार्थ रूप में किया है :—

दरमिलिअचन्दकिरणा दरधुव्वन्ततिमिरणिग्गलोआ।
दरणाअइतनुविडवा दरवद्धच्छाहिमण्डला होन्ति दुमा ॥१०:३७॥

परन्तु इस प्रकार के स्थल कम हैं। प्रवरसेन में आदर्शीकरण की व्यापक प्रवृत्ति परिलक्षित होती है। पौराणिक संदर्भों और कल्पनाओं में प्रकृति के आदर्श-चित्र परिपूर्ण हैं—'सुवेल शैल के रत्नों से वर्णित अपने मूल भागों की मणियों से पाताल-तल के अन्धकार को दूर करता है तथा अपने ऊँचे शिखरों में सूर्य के भटक जाने पर गगन में अँधेरा कर देता है' (६:६)। आदर्श-रूप का चित्रण कवि वस्तुओं के रूप-रंगों की योजना से करता है—'सागर में अधिक दिनों कि प्रवाल के किसलय नीलमणि की प्रभा से युक्त होकर हरित हो रहे हैं, और ऐरावत आदि देवताओं के हाथियों की मद के गन्ध से आकर्षित होकर जब मगरमच्छ सागर से अपना मुख निकालते हैं तब मेघ उन पर वस्त्र की भाँति छा जाते हैं।' और इस स्थिति सौन्दर्य के अतिरिक्त कभी रूप-क्रिया तथा परिस्थितियों के माध्यम से आदर्शीकरण हुआ है :—

ससिबिम्बघासणिहसणकसणसिलाभिण्णिपसरिआमअलेहम्।
जोण्हाजलपव्वालिअविसमुम्हाअन्तमुणिअरविरहमग्गम् ॥६:१०॥

सुवेल की काली शिलाओं से चन्द्रमा का घर्षण, अमृत धारा का प्रवाह तथा सूर्य के रथ के निकलने से भाप का मार्ग बन जाना आदि ऐसी ही कल्पनाएँ हैं।

कथानक के आधार रूप में चित्रित प्रकृति की विभिन्न स्थितियों के अतिरिक्त महाकाव्यों में प्रकृति स्वयं कथानक की घटना के रूप में उपस्थित होती है। मानव-जीवन के व्यापक अंग के रूप में प्रकृति स्वयं भी इतिवृत्ति बन जाती है। प्राकृतिक घटना में प्रकृति के उपकरण कभी पात्रों के समान व्यवहार करते पाये जाते हैं और कभी कथावस्तु के पात्रों के कार्य के साथ प्रकृति घटना-स्थिति का रूप धारण कर लेती है। 'सेतु-बन्ध' की एक प्रमुख घटना सेतु-निर्माण है जो स्वतः प्राकृतिक घटना ही

है। सर्वप्रथम सागर वानर सैन्य के सम्मुख एक विराट बाधा के रूप में उपस्थित होता है—'आकाश के प्रतिबिम्ब के समान, पृथ्वी के निकास के द्वार के समान, दिशाएँ जिसमें विलीन हो जाती हैं ऐसा सागर भुवन-मण्डल की नीलमणि की परिखा के समान प्रलय के अवशेष जल के रूप में फैला है' (२:२)। इस महाकाव्य में सागर का विराट रूप एक घटना के समान है, क्योंकि वानर सेना उसको देख कर भय से आतंकित हो जाती है। यह सागर चरित्र रूप में भी प्रस्तुत किया गया है। राम के बाण से प्रताड़ित होकर सागर प्रज्वलित और अस्त-व्यस्त हो उठा। इसी व्याकुलता की स्थिति में सागर मानव रूप में राम के सम्मुख उपस्थित हुआ है—'अनन्तर धुओं से व्याप्त पाताल रूपी वन को छोड़ कर निकले हुए दिग्गज के समान समुद्र, बाण की ज्वाला से झुलसे हुए सर्पों तथा वृक्षों के साथ बाहर निकला'(६:१)। सेतु-निर्माण की सारी प्रक्रिया तो इस महाकाव्य की प्रधान घटना है और यह पूर्णतः प्रकृति के अन्तराल में घटी है। इसमें आदर्श तथा अलौकिक तत्व की अधिकता अवश्य है और यह प्राकृतिक घटना विस्तार के साथ चलती रही है। यह घटना बहुत सघनता के साथ प्रस्तुत की गई है और इतना विस्तार होने पर भी इसमें शिथिलता नहीं आने पाई है। निर्माण की प्रत्येक प्रक्रिया का सूक्ष्म तथा विशद वर्णन कवि ने किया है, पर समान गति के साथ। वानरों का आकाश मार्ग में जाने के बाद से नल द्वारा सेतु-निर्माण की वास्तविक प्रक्रिया तक यही स्थिति है। प्राकृतिक घटना की इतनी विराट तथा विशद कल्पना अन्य किसी कवि ने शायद ही की हो। सेतु-निर्माण के समय एक ओर तो पहाड़ों के गिरने से उठने वाले कल्लोल से सेतु-पथ में जोड़े गये पत्थर सीधे हो रहे हैं तो दूसरी ओर सागर में गिरे हुए हाथी साँपों के बंधन तोड़ रहे हैं :—

खुहिअसमुद्दत्थमिआ खुडेन्ति अक्खुडिअमअजलोज्झरपसरा।
चलणालग्गभुअंगे पासे व्व णिराअकड्ढिए माअङ्गा ॥८:४८॥

'सेतुबन्ध' कथानक की दृष्टि से वातावरण प्रधान महाकाव्य है।

उसका कारण इसकी प्राकृतिक घटनाओं की नियोजना है। सागर के वर्णन से लेकर सेतु सम्पूर्ण होने तक की समस्त कथा प्राकृतिक घटनाओं की शृङ्खला में फैली है, जो शृङ्खला घटना के स्थान पर वातावरण का आभास अधिक देती है। यह निश्चित है कि घटनाओं की पार्श्वभूमि में प्रकृति की अवतारणा और इस घटनात्मक प्रकृति के वातावरण में अन्तर होता है। पहली स्थिति में वातावरण कथा की घटना को आधार प्रदान करता है अथवा किसी प्रकार का भावात्मक प्रभाव डालता है, पर इस दूसरी स्थिति में वातावरण स्वतः कथा का अंग बन जाता है। प्रवरसेन ने पार्श्वभूमि के रूप में वातावरण का सृजन किया है। प्रथम आश्वास में हनूमान के आगमन के पूर्व शरद् के वर्णन में ऐसा ही वातावरण है। शरद् के रमणीय वर्णन में राम की विरही मनःस्थिति से विरोध है और हनूमान द्वारा सीता का सन्देश प्राप्त होने की सुखद मनःस्थिति से साम्य भी है—'भौरों की गुंजार से सचेष्ट हुए, जल में स्थित नालवाले कमल, बादलों के अवरोध से छुटकारा पाये हुए सूर्य की किरणों के स्पर्श से सुख का अनुभव करते हुए विकसित हो रहे हैं' (१:२८)। सेतु-बन्धन के प्रसंग में प्राकृतिक वातावरण इसके विपरीत कथा का अंग है। क्योंकि प्राकृतिक घटना वर्णना के रूप में ही अंकित है, अतः उसमें वाता-वरण का रूप ही प्रधान रहता है। पर्वतोत्पाटन के समय के इस प्रकार के दृश्यों से सजीव वातावरण की सृष्टि हुई है :—

पवओवऊढकडिढअसेलब्भन्तरभमन्तविसमक्खलिआ।
गहिरं रसन्ति विरयअवच्छूत्थलरुद्धणिग्गमा खइसोत्ता ॥६:३६॥

इन घटनाओं का वातावरण बहुत सघन तथा गतिशील है और इसके माध्यम से प्रवरसेन ने सौन्दर्य के विराट रूप को चित्रित किया है।

अनेक बार कवियों ने प्रकृति-दृश्यों को उपस्थित करते समय अपने पात्रों के चरित्र का संकेत सन्निहित कर दिया है अथवा भविष्य की घटनाओं की सूचना दी है। प्रवरसेन ने इस प्रकार के सफल प्रयोग किये हैं। कथा के आरम्भ में कवि ने शरद् ऋतु का प्रवेश इस प्रकार कराया

है—'वर्षा के उपरान्त, सुग्रीव के यश के मार्ग के समान, राघव के जीवन के प्रथम अवलम्ब के समान और सीता के अश्रुओं के अन्त करनेवाले रावण के वध-दिवस के समान शरद् ऋतु आ पहुँची' (१:१ ,१६)। इसी प्रकार द्वितीय आश्वास में समुद्र को 'लंकाविजय रूपी कार्यारम्भ के यौवन के समान' कहा गया है। मलय पर्वत के कन्दरामुख मे भर कर पुनः लौटते समय ऊँचे स्वर से प्रतिध्वनित होता हुआ सागर का जल राम के लिये प्राभातिक मंगल-वाद्य की तरह मुखरित हुआ' (५:११)। इसमे राम की विजय का संकेत छिपा है, जो चरित्र-नायक के गौरव को ध्वनित करता है। दसवें आश्वास में सायंकाल के वर्णन मे रावण के पराभव की भावना कई स्थलों पर व्यंजित है—'धूल से समाक्रान्त, अस्त होता सूर्य और नाश निकट होने के कारण प्रतापहीन रावण सामने दिखाई पड़ते हैं' (१०:१२)। घटनाओं की गति को परिलक्षित करने के लिये प्रकृति का सुंदर प्रयोग किया गया है। ग्यारहवें आश्वास में रात्रि के वातावरण मे सीता के विलाप-कलाप का प्रसग है, इसके बाद बारहवे आश्वास मे सीता के आश्वासन के साथ प्रात.काल उपस्थित होता है :—

ताव अ दरदलिउप्पलपलोट्टधूलिमइलन्तकलहंसउलो ।
जाओ दरसंमीलिअहरिआअन्तकुमुआअरो पच्चूसो ॥१२:१॥

प्रातःकाल के साथ जैसे युद्ध की संभावनाओं की ओर कवि ने संकेत किया है।

कालिदास प्रकृति को मानवीय सम्बन्धो के धरातल पर प्रस्तुत कर सके है। उनके काव्य मे प्रकृति और मानव मे आत्मीय संबध है। प्रवरसेन मे प्रकृति का व्यापक विस्तार होते हुए भी, मानवीय और प्रकृति का आत्मीय सम्बन्ध नहीं व्यक्त हुआ है। इनके काव्य मे प्रकृति इस धरातल पर मानव जीवन से सम्बन्ध नही स्थापित कर सकी, यद्यपि उसमे रंग-रूपों की गहराई के साथ जीवन का आरोप मिलता है। राम के सम्मुख सागर का प्रवेश घटना के रूप मे अधिक है। आरोप के माध्यम से प्रकृति मे मानवीय सहानुभूति के स्थल अवश्य मिल जाते है—'यूथ-

पति के विरह में खिन्न मग्न और रोती हुई हरिणियां जो नगनगों में आँसू छलक आये और वे नये तृणों के आस्वादन को भी विष समान मान रही हैं’ (६:६८)। एक दूसरे चित्र में हरिणों और हरिणियों को मानवीय सहानुभूति के रंग में चित्रित किया गया है--‘पर्वतों के टूटने से उठती हुई ऊँची-नीची तरंगों से प्लावित होने से व्याकुल फिर भी एक दूसरे के अवलोकन में सुखी हरिण-समूह, जल के वेग से एक दूसरे से अलग होकर फिर मिलते हैं और मिल कर अलग हो जाते हैं’ (७:२४)। नदी तथा पर्वत में संबंधों का आरोप कोमल भावानुभूति से युक्त है--

वडवामुहसंतावे भिण्णअडेअ गरुए तरङ्गप्पहरे ।
आगरहि अकुलहराण व सरिआण कए ण माअरस्स महन्तम् ॥
६-५३॥

पर्वत अपनी पुत्रियों (नदियों) के लिये सागर की तरंगों का आघात सहन कर रहा है। प्रेमी-प्रेमिका के रूप में प्रकृति के पात्रों का चित्रण महाकाव्यों की व्यापक प्रवृत्ति है---‘रात में किसी तरह प्रियतम के विरह दुःख को सह कर चक्रवाकी, चक्रवाक के शब्द करने पर उसको ओर बढ़ती हुई मानों उसका स्वागत करने जा रही हैं’ (१२:६)। यहाँ केवल प्रेम की भावात्मक व्यंजना है। परन्तु जब यह आरोप की प्रवृत्ति मधु-क्रीडाओं के चित्रण में विकसित होती है तब प्रकृति उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत अधिक जान पड़ती है।

परन्तु ऐसे स्थल भी हैं जिनमें भावारोप प्रधान है और वे भाव-व्यंजना की दृष्टि से सुन्दर हैं। इस चित्र में कमल की भावना का रूप अन्तर्निहित है—‘बादलों के अवरोध से छुटकारा पाये हुए सूर्य की किरणों के स्पर्श से भौरों की गुन-गुन में सचेष्ट हुए जल में स्थित नालवाले कमल सुख का अनुभव करते हुए विकसित हो रहे हैं’ (१:२८)। प्रकृति मानवीय भावनाओं में स्फुरित हो रही है। ‘सागर का जल निस्तार सूख रहा है। वह धीरे धीरे तट रूपी गोद छोड़ रहा है और इस प्रकार पग-पग पीछे खिसक रहा है’ (५:७२)। इससे सागर के पग-पग पीछे खिस-

कने में उसके भयभीत होने की व्यंजना है। इसी प्रकार भयभीत तथा उद्विग्न हरिणियों का चित्र भी सजीव है :—

हीरन्तमहिहरएहिं मईहि भअहित्थपत्थिअणिअनाहिं।
सोहन्ति खणविअन्तिअसम्भमुम्मुहपलोइआइ वणाइ ॥६ : ८०॥

'किन्नरों के मन भावने गीतों को सुन कर सुखी हुए खिलती-सी आँखोंवाले हरिणों का रोमाञ्च बहुत देर बाद पूर्वावस्था को प्राप्त होता है' (६:८७)। इस दृश्य में हरिणों की भावास्थिति का कोमल चित्रण किया गया है।

काव्य-शास्त्र में प्रकृति को उद्दीपन-विभाव के अन्तर्गत स्वीकार किया है। प्रकृति को केवल मानवीय भावों के उद्दीपन रूप में स्वीकार करने की परम्परा बाद में विकसित हुई होगी, क्योंकि बाद के अत्यधिक अलंकृत काव्य में प्रकृति को रूढ़िवादी उद्दीपन रूप में चित्रित किया गया है। प्रवरसेन का प्रकृति के प्रति यह दृष्टिकोण नहीं है। ऐसे कई अवसर प्रस्तुत महाकाव्य में आये हैं जिनमें प्रकृति-चित्रण के साथ मानवीय भावों का भी वर्णन किया गया है, पर इनमें प्रकृति स्वतन्त्र रूप से अधिक उपस्थित हुई है। आरोप के माध्यम से उद्दीपन की व्यंजना यत्र-तत्र ही है। राम की मनःस्थिति के साथ शरद् के वर्णन में इस प्रकार के संकेत हैं जिनसे उनकी विरह की भावना उद्दीप्त होती है। इस आरोप से यह भाव स्पष्ट हो जाता है—'प्रवास के समय वर्षाकाल रूपी नायक ने दिशा नायिका के मेघ रूपी पीन पयोधरों में इन्द्रधनुष के रूप में जो सुन्दर नख-क्षत लगाये थे, वे अब बहुत अधिक मलीन हो गये हैं' (१:२४)। प्रकृति पर आरोपित वियोग की व्यंजना से राम का विरह बढ़ सकता है। आगे नलिनी को देख कर लोगों के आकर्षित होने में यही भाव सन्निहित है:—

खुडिडप्पइअमुणाल दट्ठूण पिअं व सिढिलवलअं णलिणिम्।
महुअरिमहुरुल्लावं महुमअतम्बं मुहं व घेप्पइ कमलम् ॥१:३० ॥

यहाँ प्रियतमा की कल्पना से प्रकृति चित्र शृंगार का उद्दीपन हो गया है। प्रयोपवेशन के समय चन्द्रोदय होता है और उसको देख कर राम

के हृदय की व्यथा बढ़ जाती है और इस कारण सीता विरह में व्याकुल राम को रात्रि भी बढ़ती हुई जान पड़ी (५:१)। निशावसान्यों के संभोग वर्णन की पृष्ठभूमि में इस प्रकार की व्यंजना प्रकृति के उद्दीपन रूप को ही अभिव्यक्ति करती है—'रात्रि के व्यतीत होने के साथ किञ्चित विकास को प्राप्त गाढ़ी प्रतीत होने के कारण हाथ से हटाये जाने के योग्य ज्योत्स्ना से बोझिल कुछ-कुछ खिला हुआ कुमुद अपने भार से फैले हुए दलों से काँप रहा है' (१०:५०)। इस दृश्य में मानवीय मधुक्रीड़ा का संकेत व्यंजित है। परन्तु कभी-कभी आरोप स्पष्ट रूप में प्रस्तुत होकर यही कार्य करता है। समुद्र की वेला का यह चित्र संभोगोपरान्त नायिका के समान अंकित किया गया है—'नत उन्नत रूप से स्थित फेनराशि जिसका अंगराग है, जिसका नदी-प्रवेश रूपी मुख विद्रुम जल रूपी दन्तव्रण से विशेष कान्तिमान है तथा मुद्रित वन-रूपी कुसुम ग्रथित केशपाश है जिसकी ऐसी, समुद्र-रूपी नायक के संभोग-चिह्नों को वेला नायिका धारण करती है।' इसमें बहुत प्रत्यक्ष रूप में प्रकृति पर संभोगोपरान्त चिह्नों का आरोपित किया गया है। इस प्रकार प्रकृति को उद्दीपन-विभाव में प्रायः मानवीकरण के रूप में प्रस्तुत किया गया है।[1]

रस, अलंकार और छंद भारतीय साहित्य में व्यापक रूप से कथा सम्बन्धी कौतूहल अथवा उत्सुकता के स्थान पर काव्यात्मक रसानुभूति का अधिक महत्त्व स्वीकार किया गया है। यह बात नाटकों के सम्बन्ध में सत्य है और महाकाव्यों के सम्बन्ध में भी। महाकाव्यों में रस की प्रधानता होती है। 'सेतुबन्ध' में अन्य अनेक महाकाव्यों के समान शृंगार रस प्रधान नहीं है। परन्तु इसका वर्णन महत्त्वपूर्ण अवश्य है। संभोग शृंगार के लिये इस काव्य की प्रमुख कथावस्तु में अवसर नहीं था, क्योंकि सीता के वियोग की स्थिति में राम के अध्यवसाय पर इसकी कथावस्तु आधारित है। परन्तु रामकथा के

१—लेखक की पुस्तक 'प्रकृति और काव्य' (संस्कृत) में इस प्रकरण को अधिक विस्तार दिया गया है।

अन्तर्गत राक्षसियों के संभोग वर्णन की परम्परा का सूत्रपात्र कर प्रवरसेन ने शृंगार के इस अंग की पूर्ति की है। पर इस प्रसंग में कवि ने अन्तर्दृष्टि तथा पर्यवेक्षण का परिचय दिया है। एक मनोवैज्ञानिक परिस्थिति का चित्रण इस प्रकार है—'बिना मनुहार के प्रियजनों को सुख पहुँचाने वाली कामिनियाँ सखियो द्वारा एकटक देखी जाने के कारण लज्जित हुई और इस आशंका से त्रस्त हुई कि इन युवतियो का झूठा कोप प्रियतमों द्वारा जान लिया गया है' (१०:७२)। इस प्रसंग मे कवि ने विभाव, अनुभाव तथा संचारियो के संयोजन मे काव्य-कौशल का परिचय दिया है। अनुभावो के माध्यम से अनेक संचारियों की स्थिति को एक साथ व्यंजित किया गया है—'प्रियतमों के दर्शन से नाच उठा युवतियो का समूह विमूढ़ हुआ बालों को स्पर्श करता है, कडो को खिसकाता है, वस्त्रों को यथास्थान करता है और सखी जनो से व्यर्थ की बात करता है' (१०:७०)। इन विभिन्न अनुभावों से युवतियो के मन का उल्लास, विमुग्धता, उद्विग्नता, लज्जा तथा विभ्रम आदि भाव एक साथ व्यजित हुए हैं। कहीं-कहीं अनुभावो के सुन्दर चित्रण के साथ सूक्ष्म भावाभिव्यक्ति की गई है :—

सुरअसुहद्धमउलिअं भमरदरक्कन्तमालईमउलणिहम्।
साहइ समरुप्पेसं उप्पित्थुम्मिल्लतारअं णअणजुअम्॥१०:६१॥

यहाँ नेत्रो की भंगिमा से अनुराग तथा भय दोनों की आकुलता व्यक्त हुई है।

विप्रलम्भ शृंगार को इस काव्य मे अवसर मिला है। सीता के अपहरण किये जाने के कारण राम वियोग दुःख को सह रहे हैं और सीता भी विरहिणी हैं। परन्तु जैसा कहा गया है, 'सेतुबन्ध' काव्य मे प्रमुख कथा राम के अध्यवसाय से सम्बन्धित हैं, इस कारण विप्रलम्भ के कुछ ही स्थल है। काव्य का प्रारम्भ राम के विरह जन्य क्लेश के वर्णन से किया गया है। शरद् ऋतु का सौन्दर्य राम के विरह को उद्दीप्त करता है—'इस प्रकार सरोवरो मे कुमुद विकसित हो गये है तथा सूरमाओं

की नायिकाओं के मुख रूपी कमल को म्लान करने वाले चन्द्रमा का आलोक फैलना है, ऐसी चमकते हुए तारों से युक्त नभ श्री राज-लक्ष्मी के स्वयंवरण की गोष्ठी के समान शरद् ऋतु के उपस्थित होने पर राम का दुर्बल शरीर और भी क्षीण हुआ। (१:२२)। परन्तु कवि ने अप्रस्तुत-विधान से राम के शौर्य को तथा भविष्य में उनकी विजय की व्यंजना भी की है। इसी प्रकार प्रायोपवेशन काल में रात्रि के समय राम सीता के वियोग का अनुभव करते हैं —'चन्द्र किरणों की निन्दा करते हैं, कुसमायुध पर खीझते हैं, रात्रि में घृणा करते हैं तथा 'जानकी जीवित तो रहेगी' इस प्रकार मारुति से पूछते हुए राम विरह के कारण क्षीण होकर और भी क्षीण हो रहे हैं' (५:५)। सीता की विरहावस्था का वर्णन कवि ने कोमल और गहन रंगों में किया है। सीता के विरही रूप का अत्यन्त द्रावक वर्णन है विकला होने के कारण मेरालावरण हरता सूखा है, मुखमण्डल आंसू से धुले अलकों से आच्छादित है, नितम्ब प्रदेश पर करधनी नहीं है तथा अंगरागों और आभूषणों से रहित होने के कारण उसका लावण्य और भी बढ़ गया है (११:४१)। रूप के साथ विरहजन्य अनेक भावों की सूक्ष्म अभिव्यक्ति हुई है :—

थोअमउआअअढिअपिअअमगअहिअअमुएणणिब्बलणअणम् ।
कडवलसद्दाअण्णणवाहतरङ्गपरिघोलमाणपहरिस्सम् ॥ ११ : ४२ ॥

वानर सैन्य के कोलाहल को सुन कर मिलन की संभावना के कारण सीता के मन में दुःख के साथ हर्ष का भाव भी जाग्रत होता है जो उनके अश्रु-प्लावित नेत्रों से व्यक्त हुआ है। आगे अब सीता के सम्मुख राम का मायाशीश प्रस्तुत किया जाता है तब विप्रलम्भ करुण रस में परिवर्तित हो जाता है।

काव्यशास्त्रियों ने अनौचित्य रूप से व्यंजित होने पर रस को रसाभास की संज्ञा दी है। इस दृष्टि से रावण का सीता विषयक अनुराग रसाभास मात्र है। ग्यारहवें आश्वास के प्रारम्भ में रावण की काम-पीड़ा का विस्तार से वर्णन है। रावण का सीता विषयक यह भाव शुद्ध अनु-

राग की कोटि में नहीं आता, यह केवल कामवासना है। इसमें रति स्थायी की स्थिति स्वीकार की जा सकती है, पर वास्तविक प्रेम के अभाव से इसको रसाभास मानना उचित है। रावण की व्याकुलता का विशद वर्णन किया गया है। वह इस वासना से उद्विग्न होकर व्याकुल हो गया है—'रावण के मन में सीता विषयक वासना अब विस्तार नहीं पा रही है, वह अब चिन्ता करता है, साँसें लेता है, खिन्न होता है, भुजाओं का स्पर्श करता है, अपने मुखों को धुनता है और सन्तोषहीन हँसी हँसता है' (११:३)। इन विभिन्न अनुभावों के माध्यम से रावण के हृदय की विकलता, चिन्ता, विभ्रम आदि को व्यक्त किया गया है। इस प्रसंग में रावण अपनी व्याकुलता को छिपाकर दक्षिण नायक का अभिनय करता हुआ चित्रित किया गया है :—

दुच्चिन्तिअावसेसं पिआहि उन्मच्छसंभमकआलोअम् ।
हसइ खणं अप्पाणं अणहिअअविसज्जिआसणाणिअत्तन्तम् ॥
११.२०॥

रावण की व्याकुलता उसकी सूखी हँसी में और भी व्यक्त हुई है।

'सेतुबन्ध' महाकाव्य का प्रधान रस वीर ही माना जायगा। हनूमान द्वारा सीता का समाचार मिलते ही राम के हृदय में उत्साह का संचार दिखाया गया है और यह उत्साह का स्थायी भाव रावण वध तक राम के मन में बना रहता है। उत्साह वीर रस का स्थायी है, अतः इस महाकाव्य को वीर-रस प्रधान माना जाना चाहिए। और क्योंकि रौद्र रस में शत्रु ही आलंबन विभाव और उसके कार्य उद्दीपन विभाव होते हैं, इसलिए वीर के साथ रौद्र रस का प्रयोग भी इस महाकाव्य में विस्तार के साथ हुआ है। सीता का समाचार पाकर राम का हृदय एक ओर वियोगजन्य व्यथा से अभिभूत हुआ है और दूसरी ओर उनको रावण पर क्रोध भी आता है—'अश्रु से मलिन होते हुए भी रावण के अपराध चिन्तन से उत्पन्न क्रोध से राम का मुख प्रखर सूर्य मण्डल के समान कठिनाई से देखने योग्य हो गया।' (१:४२) इस रौद्र भाव के साथ

ही राम के हृदय का उत्साह उनके अपने धनुष पर दृष्टिपात करने की प्रक्रिया में व्यक्त हुआ है—'उनकी दृष्टि में धनुष मानो प्रत्यंचावाला हो गया'; इस कथन में उत्साह की सूक्ष्म व्यंजना हुई है। सागर को देख कर विक्षुब्ध हुए वानर सैन्य को सुग्रीव ने प्रोत्साहित किया है; और इस वक्तृता में वीर रस की सृष्टि हुई है। सुग्रीव कहते हैं—'हे वानर वीरो, तुम्हारी भुजाएँ शत्रु का दर्प सहन नहीं कर सकती हैं, प्रहार-कार्य के लिये सुलभ पर्वत उपस्थित हैं और विस्तृत आकाश मार्ग तो लाँघने के लिये सहज है, क्योंकि शत्रुओं की महानता ही क्या है' (३:३८)। यहाँ कार्य-सिद्धि के मार्ग को सरल बतला कर शत्रु को अकिंचन सिद्ध किया गया है। आगे सुग्रीव ने आत्मोत्साह के कथन में वीर भाव प्रकट किया है—'महासमुद्र के बीच दो विशाल खंभों के समान मेरी भुजाओं पर स्थित उखाड़ कर लाये हुए विन्ध्य पर्वत रूपी सेतु से ही वानर सेना सागर पार करे' (३:५६)। सागर ने जब राम की प्रार्थना नहीं सुनी, तब राम क्रोध करते हैं, उनके मुख पर राहु की छाया के समान आकाश का आविर्भाव हुआ, भ्रकुटी चढ़ गई, जटाओं का बन्धन ढीला हो गया और उनकी दृष्टि अपने धनुष पर जा पड़ी' (५ : १४ , १५)। ये सब रौद्र के अनुभाव हैं जिनमें राम का क्रोध व्यक्त हुआ है। आगे युद्ध के प्रसंग में वीर तथा रौद्र दोनों रसों का पूरा निर्वाह किया गया है। राम का धनुष टंकार, वानरों का कलकल नाद, राक्षसों का कवच धारण कर वेग से रथों पर युद्ध के लिये चल पड़ना आदि सब वीर भावना के अनुभाव ही हैं। प्रवरसेन ने दोनों पक्षों के उत्साह का समान रूप से वर्णन किया है। एक ओर समर्थ राक्षस सैनिक कवच धारण करते हैं, उनसे वानरों का कलकल सुना नहीं जाता तथा युद्ध में विलम्ब जान कर उनका हृदय खिन्न हो रहा है' (१२:६७)। और दूसरी ओर—'राक्षसों को समीप आया जान, क्रोध में दौड़ पड़ा वानर सैन्य, धैर्यशाली सुग्रीव द्वारा शांत किये जाने पर रुक-रुक कर कलकल नाद कर रहा है' (१२.७०)। तेरहवें से लेकर पन्द्रहवें आश्वास तक विस्तार से युद्ध वर्णन है जिसमें

वीर तथा रौद्र रस का पूरा परिपाक है। युद्ध वर्णन में अनुभावों का अधिक विस्तार होता है, यत्र-तत्र संचारी भावों का चित्रण भी है :—

अवहीरणा ण किज्जइ सुमरिज्जइ संसए वि सामिअसुकअम्।
ण गणिज्जइ विणिवाओ वद्धे वि भ अग्गि संमरिज्जइ लज्जा ॥
१३:८६॥

इस प्रसंग में स्मृति, धृति, लज्जा आदि कई भाव एक साथ उपस्थित हुए है।

प्रवरसेन के 'सेतुबन्ध' में अद्भुत रस को पर्याप्त अवसर मिला है। इस रस के स्थायी विस्मय के लिये आश्चर्यजनक तथा विचित्र वस्तुऐं आलम्बन होती हैं और 'सेतुबन्ध' मे राम का बाण-सन्धान, सागर का उस पर प्रभाव, पर्वतों का उत्पाटन, उनका सागर-तट पर लाया जाना, सागर मे पर्वतों का गिराया जाना तथा सेतु-निर्माण ऐसी घटनाएँ हैं जो अलौकिक होने के साथ ही आश्चर्यजनक हैं। इनके वर्णन-विस्तार में व्यापक रूप में अद्भुत रस की सृष्टि हुई है। कवि ने इन समस्त प्रसंगों मे अद्भुत परिस्थितियों की कल्पना की है—'अर्द्धभाग के उखाड़ लेने पर भूमितल से जिनका सम्बन्ध शिथिल हो गया है, जिनके शेषभाग को अधःस्थित सर्प खींच रहे है और जिन पर स्थित नदियाँ पातालवर्ती कीचड़ में निमग्न हो रही हैं, ऐसे पर्वतों को वानर उखाड़ रहे हैं।' (६:४०) इस प्रकार के सैकड़ों दृश्य इन प्रसंगों मे हैं। युद्ध-वर्णन के प्रसंग में भयानक रस का निर्वाह भी हुआ है। वीर योद्धाओं का भीषण युद्ध भयोत्पादक है, और भय के कारण युद्ध से विमुख होकर भागते हुए वीरों का वर्णन भी विस्तार के साथ किया गया है। कवि राम बाण के आतंक का वर्णन करता है—'काट कर गिराये गये सिरों से जिनकी सूचना मिलती है, ऐसे राम बाण, धनुष खींचने वाले राक्षस के हाथ पर, मारने की कल्पना करने वाले राक्षस के हृदय पर तथा 'मारो मारो' शब्द कहने-वाले राक्षस के मुख पर गिरते ही दिखाई देते हैं।' (१४:६) सागर को देख कर वानर सैन्य पर भय का आतंक छा जाता है। प्रवरसेन ने वानर

वीरों के भय का चित्रण भावात्मक शैली में किया है

कह वि ठवन्ति पवङ्गा समुद्ददंसणविसाअविमुहिज्जन्तम् ।

गलिअगमणाणुराअं पडिवन्थथिरअलोअणं अप्पाणम् ॥२.४६॥

इस आतंक में विस्मय का भाव भी है, परन्तु समुद्र अनेक मार्ग में विराट बाधा के रूप में उपस्थित हुआ है, इस कारण वह भय का आलम्बन भी है।

'सेतुबन्ध' में करुण रस की अवतारणा भी की गई है। काव्य-शास्त्र के अनुसार वास्तविक अथवा काल्पनिक मृत्यु से रस की सृष्टि होती है। इस महाकाव्य में सीता के सम्मुख राम का मायाशीश लाया जाता है और सीता राम की मृत्यु की कल्पना से करुणाभिभूत हो जाती है। इस प्रसंग में कवि ने अनुभावों का विस्तृत वर्णन किया है--'थोड़ी थोड़ी साँस लेती हुई मूर्च्छा के बीत जाने पर भी अचेत सी पड़ी हुई सीता ने सतत प्रवाहित अश्रुजल से भारी और कष्ट के कारण मुँदी हुई पुतलियों वाले नेत्र खोले' (११:६०)। सीता के विलाप और रुदन में यही करुण भावना व्यंजित है। युद्ध के अन्तराल में राम लक्ष्मण नाग-पाश में बँध जाते हैं। उस अवसर पर राम की मूर्च्छा पहले खुल जाती है और राम लक्ष्मण को मृत मान कर विलाप करने लगते हैं। मेघनाद के वध पर रावण और रावण के वध पर विभीषण में कवि ने करुण भाव का चित्रण किया है।

इस प्रकार उपर्युक्त वर्णन विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रवरसेन ने अनेक रसों का प्रयोग अपने महाकाव्य में किया है। इस काव्य में वीभत्स, हास्य तथा शान्त को छोड़, अन्य सभी रसों का पूरा विस्तार है। पर वीर, रौद्र, शृंगार तथा अद्भुत रसों का अपेक्षाकृत अधिक व्यापक और उत्कृष्ट प्रयोग हुआ है।

अलंकारों का प्रयोग महाकाव्यों की शैली की प्रमुख विशेषता है।



इसी कारण इनको अलंकृत काव्य कहा गया है। शब्दालंकारों मे 'सेतु बन्ध' मे प्रमुखतः अनुप्रास, यमक और श्लेष का प्रयोग किया गया है। अनुप्रास का प्रयोग, अन्य महाकाव्यो के अनुसार, प्रस्तुत काव्य में बहुत अधिक हुआ है। संस्कृत महाकाव्यो मे यमक का इतना अधिक प्रचलन रहा है कि कभी-कभी कवि ने सम्पूर्ण सर्ग में इसका प्रयोग किया है। परन्तु यह प्रकृति बाद के महाकाव्यो की है। प्राकृत कवि प्रवरसेन ने इस प्रकार तो यमक का प्रयोग नही किया है, परन्तु गलितक छंदों मे इसका प्रयोग हुआ है और दो आर्या (१ : ५६, ६२) छंदों मे भी। चार गलितक छंदो (६:४३,४४,४७,५०) में तो पहला चरण दूसरे चरण मे और तीसरा चरण चौथे मे ज्यो का त्यों दुहराया गया है :—

मणिपहम्मसामोअअं मणिपहम्मसामोअअम् ।
सरसरणाणिद्दावअं सरसरणाणिद्दावअम् ।।६:४३।।

श्लेप का प्रयोग भी यत्र-तत्र मिलता है। उदाहरणार्थ द्वितीय आश्वास के छंद ३ में 'सासअमएण' का अर्थ चन्द्रमा के पक्ष में 'जिसके अंक मे मृग है' और गज के पक्ष मे 'जिसके शाश्वत मदधारा है', ऐसा लगेगा। छंद ८ मे 'सुहिअ' तथा 'वलवन्तं' मे भी श्लेष है।

अर्थालंकारों का प्रयोग कवि की कल्पनाशक्ति तथा सौन्दर्य्य बोध की प्रतिभा पर निर्भर है। बाद मे अलंकारो का प्रयोग निर्जीव होकर ऊहात्मक तथा उक्तिवैचित्र्य प्रधान हो गया है, परन्तु पहले कवियो मे अलंकार प्रस्तुत वर्ण्यवस्तु को अधिक प्रत्यक्ष, बोधगम्य तथा सुन्दर रूप मे चित्रित करने के लिये प्रयुक्त हुये हैं। अप्रस्तुत विधान मे उनकी कल्पनाशक्ति का परिचय मिलता है। अनेक स्थलो पर अलंकार से भाव-व्यंजना हुई है। प्राकृत साहित्य में 'सेतुबन्ध' सर्वप्रधान अलंकृत काव्य है। इसमे प्रमुख रूप से उपमा, रूपक तथा उत्प्रेक्षा का प्रयोग हुआ है। प्रकृति वर्णन पर विचार करते समय तथा अन्य प्रसंगों मे ऐसे अनेक चित्रों को उद्धृत किया जा चुका है जिनमे अलंकारो के प्रयोग से प्रस्तुत दृश्य-विधान को अधिक प्रत्यक्ष और चित्रमय किया गया है। यहाँ अलंकारों

के प्रयोग की दृष्टि से विचार ना सकते हैं।

उपमा अलंकार में प्रस्तुत (उपमेय) और अप्रस्तुत (उपमान) के समान धर्म का कथन होता है। वस्तुतः यह अलंकार सादृश्यमूलक अलंकार में प्रधान है तथा इसके माध्यम से इन अलंकारों का प्रयोग होता है। दो वस्तुओं अथवा स्थितियों को इस प्रकार प्रस्तुत करने से वर्ण्य विषय में उत्कर्ष आ जाता है, वह अधिक प्रत्यक्ष अथवा व्यंजक हो जाता है। आकाश और कमल की समानता का वर्णन कवि करता है—'शरद् ऋतु का आकाश भगवान् विष्णु की नाभि से निकले हुए उस अपार विस्तृत कमल के समान सुशोभित हो रहा है जिसमें ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई है, सूर्य की किरणें ही जिसमें केसर हैं और बादलों से सहस्रों खंड दल हैं' (१.१७)। यहां उपमा की कल्पना से कवि ने आकाश के चित्र को सुन्दर तथा प्रत्यक्ष बनाया है। अनेक चित्रों में कवि ने उपमा के साथ अन्य अलंकारों को प्रस्तुत कर चित्र में कई व्यंजनाएं समाहित कर दी हैं—'राम की दृष्टि सुग्रीव के वक्षस्थल पर वनमाला की तरह, हनूमान पर कीर्ति के समान, वानर सेना पर आभा के समान, और लक्ष्मण के मुख पर शोभा के समान पड़ी' (१.४८)। सहोपमा तथा साधर्म्य उपमा के साथ इसमें यथासंख्य तथा उत्प्रेक्षा का प्रयोग भी है। इस तुलना से कवि ने सुग्रीव के भाषण के प्रभाव को अधिक व्यंजित किया है—'चन्द्र के दर्शन से प्रसुप्त कमल-वन जिस प्रकार सूर्योदय होने पर खिल जाता है, उसी प्रकार सुग्रीव के प्रथम भाषण से निश्चेष्ट हुई वानर सेना बाद में उत्साहित तथा लज्जित होकर भी जाग्रत हो गई' (४.१)। यहां कमल-वनों के प्रस्फुटन से चित्र को प्रत्यक्ष तथा भावपूर्ण बनाया गया है (४:४५)। ऋक्षपति के वचनों में रत्नाकर से उच्छ्वलित रत्नों के साम्य से भी वाणी की गरिमा के साथ कथन की महत्ता का भी संकेत है (५.१३)। 'राम के मुख पर आकाश को चन्द्रमा पर राहु की छाया के समान' कहने से राम के मुख की भंगिमा और मन का विनाशकारी क्रोध दोनों ही व्यक्त हुए हैं। सेतुपथ से बंधे हुए समुद्र को स्वप्न में बांधे गये

बनैले हाथी के समान, वर्णित करने से दृश्य अधिक सजीव हो गया है (८:१०१)। रूपकपुष्ट उपमाओं में चित्र अधिक पूर्ण हो सका है—'जिसके राक्षस विटप (पत्ते) हैं, सीता किसलय है ऐसी लता के समान लंका सुवेल से लगी है' (३:६२)। कहीं कहीं पौराणिक कल्पनाओं का सहारा भी लिया गया है। नदियों के प्रवाह को प्रलयकालीन उल्का-दण्ड के समान इस रूप में कहा गया है :—

मुहपुञ्जिअग्गिणिवहा धूमसिहाणिहणिराअअड्ढिअसलिला।
णिवडन्ति णहुक्खित्ता पलउक्कादण्डसंणिहा णइसोत्ता ॥ ५:७२ ॥

'सेतुबन्ध' में रूपकों का प्रयोग भी सफलतापूर्वक हुआ है, और इसके माध्यम से प्रस्तुत में अप्रस्तुत चित्रों का अभेद रूप से आरोप किया गया है। इस आरोप में एक दूसरे के अत्यधिक निकट आ जाने के कारण वर्ण्य अधिक सजीव हो जाता है और उपमानों की योजना उसमें एक रूप होकर सम्पूर्ण चित्रण को दृश्यबोध तथा गति प्रदान करती है। यह उद्देश्य रूपकों की शृंखला अथवा सांग रूपक में अधिक सिद्ध होता है। वर्षाकाल के लिये कवि कल्पना करता है कि—'यह राम के उद्यम सूर्य के लिये रात्रिकाल, आक्रोश महागज के लिये अर्गलाबन्ध तथा विजय-सिंह के लिये पिंजड़ा है' (१ : १४)। इसमें वर्षाकालीन राम की मनःस्थिति का सुन्दर चित्रण किया गया है और राम की उपायहीनता की व्यंजना भी अन्तर्निहित है। इसी आश्वास के २४ वें छंद में नायक नायिका का रूपक वर्षा तथा दिशाओं के लिये बाँधा गया है। कभी-कभी रूपक की शृंखला से चित्र अधिक सुन्दर बन पड़ा है। कवि 'कल-हंसों के नाद को कामदेव के धनुष की टंकार, कमलवन पर संचरण करने वाली लक्ष्मी के नूपुर की ध्वनि तथा भ्रमरी और नलिनी के संवाद' (१ : २९) के रूप में कहता है। इसमें एक ही स्थिति के लिये कई अप्रस्तुत योजनाएँ प्रस्तुत की गई है। इसी प्रकार शरद् ऋतु को भी 'सुग्रीव के यश का मार्ग, राघव के जीवन का प्रथम अवलम्ब तथा सीता के अश्रुओं का अन्त करने वाला रावण का वध-दिवस' (१ : १६) कहा

गया है। अन्यत्र सम्पूर्ण दृश्य-विधान में एक रूपक घटित किया जाता है :—

दीसन्ति गअउलग्गिएहिं सारेम्भजलमअन्दविआए गमेलिएहि ।
भवणाच्छाहिसमूहा दीहा, णीसारिअकद्दमपअच्छाआ ॥ १०:४७ ॥

चन्द्रोदय के बाद भवनों के छाया समूह के लिये कवि ने सिंह से भगाये गये गजों के पंकिल चरण-चिह्नों की कल्पना की है।

'सेतुबन्ध' में उत्प्रेक्षा का प्रयोग सर्वाधिक हुआ है और कवि ने उसमें उत्कर्ष प्राप्त किया है। इस अलंकार में कवि आरोप के स्थान पर प्रस्तुत की अप्रस्तुत रूप में सम्भावना करता है। प्रवरसेन आदर्श कल्पनाओं के कवि हैं, अतएव उनमें उत्प्रेक्षाओं के प्रयोग अधिक मिलते हैं। इनके माध्यम से कवि ने वस्तु-स्थितियों के सम्बन्ध में, उनके विभिन्न हेतुओं की कल्पना में तथा फल की संभावना में वैचित्र्य उत्पन्न किया है। 'नदियों के प्रवाहित जल-रूपी वलयों (भंवरों) के बीच में भ्रमित पर्वत इस प्रकार दिखाई दे रहे हैं मानों समुद्र के आवर्तों में चक्कर लगा रहे हों' (६ : ४६)। इसमें एक वस्तु-स्थिति को दूसरी वस्तु-स्थिति की संभावना से अधिक प्रत्यक्ष किया गया है। अनेक स्थितियों के कारण के सम्बन्ध में भी कल्पना द्वारा वैचित्र्य की सृष्टि की गई है—'दूर तक दिशा-दिशा में दौड़ते से जिसके शिखर विकट आकार में प्रतिबिम्बित होते हुए ऐसे जान पड़ते हैं मानों चोटी पर वज्र प्रहार होने से उसका एक भाग समुद्र में गिर गया है' (६ : १३)। शिखरों के प्रतिबिम्ब के कारण के सम्बन्ध में कवि ने कल्पना की है, जो वास्तव में उसका कारण नहीं है। इस उत्प्रेक्षा में वानर सैन्य के साथ राम के प्रस्थान का चित्र सशक्त ढंग से अंकित किया गया है :—

वच्चइ अ चडुलकेसरसमुज्जलालोअआसपरिक्खित्तो ।
सव्वदिसाआअड्ढिअपलअपलित्तगिरिसंकुलो व्व समुद्दो ॥
१ : ५२ ॥

प्रलय की उद्दीप्त अग्नि से प्रज्वलित पर्वतों से आवेष्टित सागर की

कल्पना में यहाँ कवि ने सेना के उत्साह, आवेश तथा आन्दोलन आदि को व्यंजित किया है। सागर मानवीकरण में 'नदियों के मुख से अपने ही फैले हुए जल को पीता हुआ मानो अपने यश को पीता है' (६ : ५)। तथा पर्वतोत्पाटन के समय कवि 'इधर उधर भटकने से श्रान्त हाथी के कानों के संचलन, आँखों के बन्द करने तथा खेद से सूँड हिलाने' के कारण की संभावना 'साथियों के स्मरण आ जाने' के रूप में कल्पित की है' (६ : ६१)। कभी एक दृश्य के कई पक्षों को उभारने के लिये उत्प्रेक्षा शृंखला में भी प्रयुक्त होती है :—

उक्खअदुमं व सेलं हिमहअकमलाअरं व लच्छिविमुक्कम् ।
पीअमइरं व चसअं बहुलपओसं व मुद्धचन्दविरहिअम् ॥२ : ११॥

सागर मानो वृक्षहीन पर्वत है, मानों आहत कमलोंवाला सरोवर, खाली प्याला या मानों अँधेरी रात हो। इससे सागर का विराट रूप, विस्तार तथा आलंकित करने वाला शून्य व्यंजित हुआ है।

उपर्युक्त अलंकारों के प्रयोग के अतिरिक्त 'सेतुबन्ध' में गम्यमान सादृश्य मूलक अलंकारों का प्रयोग सुन्दर रूप में मिलता है। इनमें विशेष-कर अर्थान्तरन्यास, दृष्टान्त तथा निदर्शना अलंकारों का प्रयोग अधिक हुआ है। सुग्रीव वानर वीरों से कहते हैं—'हे वानर वीरों, प्रस्तुत कार्य-भार तुम्हारा ही है; प्रभु शब्द का अर्थ होता है केवल आज्ञा देने वाला, क्योंकि सूर्य तो प्रभा मात्र विस्तारित करता है पर कमल सरोवर अपने आप खिल जाते हैं' (३:६)। यहाँ सामान्य का विशेष से साधर्म्यद्वारा समर्थन किया गया है, अतः अर्थान्तरन्यास है। इसी आश्वास के ६ वे छंद में ऐसा ही प्रयोग है। इनसे वर्ण्य प्रसंग में उत्कर्ष आ जाता है और वे बोधगम्य अधिक हो जाते हैं। अगले चित्र में निदर्शना अलंकार है—'क्या अधिक समय बीतने पर इस प्रकार विचलित राम को धैर्य छोड़ न देगा? कमल से उत्पन्न लक्ष्मी क्या रात में उसका त्याग नहीं कर देती' (३ : ३०)। इसमें दृष्टान्त रूप में अपना कार्य उपमा द्वारा व्यक्त किया गया है। दृष्टान्त में उपमेय, उपमान और साधारण-धर्म का बिम्बप्रति-

बिम्ब भाव होता है—'वानरों के हृदयों में लंकागमन का उत्साह व्याप्त हो गया' जिस प्रकार 'सूर्य का प्रभात कालिक आतप गिरिशिखरों पर फैलता है' (४ : २)। इसमें विशेष स्थिति से विशेष स्थिति का समर्थन बिम्ब प्रति-बिम्ब भाव से है। परन्तु प्रवरसेन के सम्बन्ध में यह कहना आवश्यक है कि इन्होंने अपने महाकाव्य में अलंकारों का प्रयोग अधिकतर सहज रूप में किया है और भावव्यंजना के लिये भी। यही कारण है प्रस्तुत महाकाव्य में अलंकारों का अर्थ-चमत्कार के रूप में प्रयोग नहीं हुआ है।

छंदों की दृष्टि से प्राकृत महाकाव्य 'सेतुबन्ध' की स्थिति बहुत सरल है। १२९० छंदों में १२४६ आर्यागीति छंद हैं और ४४ विविध प्रकार के गलितक छंद हैं। संस्कृत महाकाव्यों के समान इसमें सर्ग के अनुसार छंदों का परिवर्तन नहीं है और न अनेक छंदों के प्रयोग का आग्रह ही। अपभ्रंश महाकाव्यों में अन्त्यानुप्रास अथवा तुक विशेष रूप से पाये जाते हैं, परन्तु प्राकृत महाकाव्यों में ऐसा नहीं है। 'सेतुबन्ध' के गलितक छंदों में यमक का प्रयोग है, पर उसे भी तुक नहीं कहा जा सकता।

सांस्कृतिक संदर्भ

प्रस्तुत महाकाव्य में राम-कथा है जिसकी परम्परा इसके रचना-काल से बहुत पहले की है। परन्तु ऐसी रचनाओं में कथावस्तु के प्राचीन होने पर भी समस्त वातावरण युग से प्रभावित होता है। कवि कथा के ऐतिहासिक काल को ध्यान में रख कर उसके अन्तर्गत उस विशिष्ट काल की सांस्कृतिक परम्पराओं को ग्रहण कर सकता है। परन्तु फिर भी व्यापक जीवन को प्रस्तुत करने में कवि अपने युग का आधार अधिक लेता है, विशेषकर ऐसे संदर्भों में जो काव्य में अप्रस्तुत योजना के अन्तर्गत आते हैं। इसके साथ ही इन महाकाव्यों में ऐतिहासिक काल की स्पष्ट चेतना नहीं है, इस कारण उसके स्थान पर कवि का अपना काल ही व्यंजित हो सका है।